# भागते किनारे



उदयराज सिंह

प्रकाशक : अशोक प्रेस, पटना-६



मूल्य : चार रुपए

मुद्रक : अशोक प्रेस, पटना ६

प्रथम संस्करण : २०००

नवम्बर १९६२.

बाल

को

सस्नेह

( डॉ० बालकृष्ण, रसायन-शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय )

चित्रा सिनेमा में आज तिल रखने की भी जगह नहीं। बदन से बदन छिल जाते, नज़र से नज़रें टकरा जातीं। उमस की बेपनाह गरमी, मगर लगता है कि सारी की सारी काशी नगरी उमड़ी चली आई है इस हॉल में। विश्वविद्यालय भी आज ही बन्द हुआ है इसलिए छात्रों का पूरा हंगामा है। गलियारी में कुर्सियाँ भी बिछी हैं मगर फिर भी लोग कोने में खड़े हैं। अजीब समाँ है। चित्रपट पर जमुना, बरुआ और सहगल का वह 'देवदास' जो दिखाया जा रहा है। एक छोर पर बिलमोरिया और सुलोचना तो दूसरे छोर पर जमुना और बरुआ की युगल जोड़ी—दोनों ही एक दूसरे के जवाब हैं, दोनों ही लाजवाब! फिर सुर-संसार का राजा सहगल जब भी शहर में आता तो धूम मच जाती। चित्रपट-जगत् में उसका कोई भी जोड़ा न आया।

अजीत सिने-जगत् का रसिया है। जमुना-बरुआ उसके दिलपसन्द सितारे हैं और वे भी आए हैं शरत् बाबू के चित्र

देवदास में—वही शरत् जिनके साहित्य का अजीत पुराना हिमायती है। उनकी कहानियों-उपन्यासों को वह दर्जनों बार पढ़ गया है और जाने कितनी रातें उसकी गुजर गई हैं पारो के जीवन पर आँसू बहाते। शरत्-साहित्य से ऐसी भावुकता जो मिल गई है उसे। भला वह न आता तो देवदास देखने कौन आता! दो दिन पहले से ही टिकट खरीद लिया था।

शरत्—फिर जमुना, बरुआ और सहगल का प्रेमी अजीत, उस उमस में भी कैसे तीन घंटे बिता दिए उसे खुद पता नहीं। दरवाजे खुले तो उसकी आँखें जाने कितनी बार भींगकर भी फिर भींग रही हैं। सिनेमा से लोग-बाग निकल गए हैं मगर वह अपनी सीट पर से उठ-उठकर भी बैठ जाता है। उसके सामने अभी भी नाच रहा है वह करुण दृश्य—पारो का वह अन्तिम वाक्य—'ओह, मेरी अंगूठी!' और वह दौड़ पड़ती है श्मशान की ओर..............कि आँगन का दरवाजा बन्द हो जाता है और वह उससे टकराकर चौखट पर गिर जाती है।

अजीत अभी अपने आप में आ ही रहा है कि किसी किशोरी के रोने की आवाज़ पर एकबारगी चौंक पड़ा—ऐं, वह तो उसी की बंडी को पकड़े रो रही है! शायद भीड़ में भटक गई है। घरवालों से बिछुड़ गई है। अजीत को उस पर दया आ गई। झट बड़े प्रेम से पूछा—'कहो, किसे

खोजती हो ?' वह रुआँसी होकर बोली—'माँ जाने किधर चली गई, दीदी भी दिखाई नहीं पड़ती..........।' वह फफक-फफक कर रोने लगी तो अजीत ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—'दुत् पगली, रोती क्यों हो ? चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ। माँ भूल गई तो भूल जाने दो। मैं तो भूला नहीं हूँ। चलो-चलो, दूसरे शो की भीड़ आ रही है। निकल भागो।' इसी बीच मेहतरों ने झाड़ू लगाना भी शुरू कर दिया। चिनिया बादाम के छिलके ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गए।

अजीत ने साइकिल स्टैंड से साइकिल निकाली और उस किशोरी को पीछे कैरियर पर बिठाकर दशाश्वमेध की ओर बढ़ चला। उधर ही वह अपनी माँ के साथ रहती है। उसके आँसू अब रुक गए हैं और वह अजीत के सवालों का उत्तर ठीक-ठीक देती जा रही है।

'तुम्हारे घर पर कौन-कौन हैं ?'

'माँ, दीदी।'

'बस ?'

'जी।'

'नाम क्या है ?'

'माला।'

'बड़ा सुन्दर नाम है।..........उम्र तुम्हारी क्या होगी ?'

'यही तेरह-चौदह साल।'

'मगर तेरह-चौदह साल की लगती नहीं हो—मैं तो तुम्हें और भी छोटी समझता था। किस क्लास में पढ़ती हो?'

'नवें में। बालिका-विद्यालय में पढ़ती हूँ।'

'किसी चीज़ में खास शौक़?'

'गाना सीखती हूँ और सितार भी बजा लेती हूँ।'

'वाह, बड़ी गुणवन्ती हो! तब तो गाना भी सुनूँगा और सितार भी बजाकर सुनाना पड़ेगा।'

वह हँस पड़ी और अजीत ने ऐसा 'टर्न' लिया कि वह कसकर उसकी कमर न पकड़ लेती तो साइकिल से चारो खाने चित हो जाती।

'मगर, हाँ, आज तुम छूट कैसे गई—क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें ढूँढ़ा नहीं?......'

'ज़रूर ढूँढ़ती होंगी। मगर भीड़ ऐसी थी कि चाह कर भी हम एक साथ बैठ न सके और एक दूसरे को देखते हुए भी एक दूसरे के पास पहुँच न सके।'

'मगर मेरा ख्याल है कि वे अभी भी तुम्हारा बाट सिनेमा में देख रही होंगी या पुलिस चौकी में खबर देने दौड़ी गई होंगी। अच्छा तमाशा रहा आज!'

'मगर आज ऐसी घटना न होती तो आप जैसे सहृदय

अभिभावक से मुझे भेंट कैसे होती ? यह तो आपकी सहृदयता है कि मैं बाल-बाल बच गई नहीं तो इस नगरी में जो बिटिया भूली सो भूल ही गई।.........'

अजीत का हृदय करुणा से अभिभूत हो गया। उसके मन में उसके प्रति जाने कैसा मोह जाग उठा। उसकी आँखें फिर गीली हो गईं। किशोरी भी गम्भीर हो गई.........

कि उसका मकान आ गया। वह साइकिल से झट उतर पड़ी और विनती की—'चलिए, ऊपर माँ और दीदी से भी मिल लीजिए। आपको देखकर वे बहुत खुश होंगी।'

अजीत उसके पीछे-पीछे कोठे पर पहुँचा। माँ-बेटी एक दूसरे को देखते ही छाती से लिपट गईं। उसकी दीदी अपनी बहन के नए अभिभावक को बड़ी कृतज्ञता की दृष्टि से देखती और बार-बार मनुहारती—'बैठ जाइए', मगर माँ-बेटी के मधुर मिलन को देखकर अजीत इस तरह जड़वत् हो रहा है कि उसे कुछ सूझ ही न रहा है। जब माँ के आँसू रुके तो उसे बहुत आशीर्वाद देती हुई अपनी बगल में बिठा लिया और भावनाओं से अभिभूत हो कहने लगी—'बेटा, तुमने तो आज मुझे नई ज़िन्दगी दी। मैं तो पुलिस थाने में जाते ही जाते मूर्च्छित हो गिर गई थी। कुछ सूझ न रहा था किधर जाऊँ, क्या करूँ! जनम की मारी विधवा जो ठहरी। कोई सहारा नहीं, किसी

का आसरा नहीं।' उसकी आँखों में फिर आँसू छलछला आए। ···· 'मैं तो सिनेमा कभी जाती नहीं—लता और माला की देखरेख के लिए मजबूरन जाना पड़ता है। आज कैसी सायत थी—धन्य है ईश्वर! तूने ही मेरी लाज रख ली। ···· बेटा, तू आज मेरे लिए भगवान् बन गया।·········'

इसी बीच लता ने एक गिलास लस्सी तथा कुछ मिठाइयाँ अजीत के सामने लाकर रख दीं। उसकी माँ कहती ही गई—'बेटा, माला के पिता मुझे इन दोनों बच्चियों की माँ बनाकर जाने कबके स्वर्ग सिधार गए। आज मुझ अभागिन को कोई सहारा नहीं। बालिका-विद्यालय की टीचरी न मिलती तो मैं दर-दर ठोकर खाती।·········खैर····कभी-कभी तुम हमलोगों की भी सुध लेते रहना। युग-युग जियो, बेटा! युग-युग जियो।'

दूसरे दिन जब अजीत माला के घर पहुँचा तो शाम गुजर चुकी थी और चारों ओर गाढ़ी कालिमा घिर रही थी। माँ-बेटी आँगन में बैठी चाट खा रही थीं और घर में बत्ती जलाना भी भूल गई थीं। पहले तो अजीत को ऐसा लगा कि घर में कोई नहीं है और वह लौट जाए। मगर सीढ़ी पर जब चढ़ने लगा तो ऐसा लगा कि माला अपनी माँ से पूछ रही है—'माँ, वह अभी तक नहीं आए। आने का वादा कर गए थे। आखिर रह कहाँ गए ?' और तब वह झट ऊपर की ओर बढ़ चला।

'माला, माला !' अजीत ने एक धीमी आवाज दी। माला तीर की तरह सीढ़ी की ओर दौड़ी और उछल पड़ी—'वह आ गए माँ, आ गए—आ गए !'

अजीत ने माँ को प्रणाम किया और उसी चारपाई पर झिझकते-झिझकते बैठ गया। माला ने झट एक तश्तरी में

चाट तथा चटनी रखकर उसे थमा दिया तो माँ ने टोका—'क्या लड़कपन कर रही है ! तेरा बचपना कभी न जाएगा । जा, नीचे दूकान से गर्म-गर्म चाट ला ।' माला जाने को तैयार हुई तो अजीत ने रोक दिया—'नहीं-नहीं, बैठो । इतनी गर्मी में ठण्डा चाट ही मज़ा देगा ।' और वह हँस पड़ा ।

'बड़ी देर लगाई बेटा, कहाँ रह गए थे ?'

'घर जाने की तैयारी है माँ जी, यह-वह का झमेला, बाज़ार में ही सारी सन्ध्या बीत गई । माँ की फ़रमाइश और, भाभी की कुछ और ।'

'युनिवर्सिटी तो अभी कल ही बन्द हुई है । आज ही से घर भागने की तैयारी क्यों करने लगे ? उधर तो इम्तहान की ही परीशानी रही । दो-चार दिन घूम-फिर लो तो घर जाना ।'

'हाँ, मैं तो रुकना चाहता हूँ मगर मेस के महराज हल्ला मचाए हुए हैं । घर जाने की तैयारी में चूल्हा-चक्की सब बन्द कर देना चाहते हैं ।'

'मेरा घर भी तो तुम्हारा ही घर है । दो-चार दिन यहीं रह जाना । मेस जैसा अच्छा खाना तो यहाँ न मिलेगा ; हाँ, जो हम खाते हैं, वही तुम्हें भी खिलाएँगे ।'

अजीत ऐसा उत्तर सुनने को तैयार न था । वह कुछ

अकचका गया। कोई जवाब उसे सूझ नहीं रहा था। माला ने उसे सहायता दी—'वाह, आप चुप क्यों हो गए? आपको आज रात से यहीं खाना होगा। समझे?........'

उसने इतनी थोड़ी बात को कुछ इस अपनापन से कहा कि अजीत अवाक् हो गया। चौबीस घण्टे में ही इतनी आत्मीयता पाने के योग्य वह न था। माँ-बेटी के सवालों का जवाब उसने एक मधुर मुस्कान द्वारा दे दिया।

स्वीकृति मिली या अस्वीकृति इसे तो उस समय कोई भाँप न सका मगर घर की महरी ने रात में जूठे बर्त्तनों के अम्बार को माँजते हुए यह जरूर महसूस किया कि आज रात एक जूठी थाली की तायदाद शायद और बढ़ गई। उसी रात डली काटते हुए माँ ने कहा—'लता, लड़का बड़ा शीलवान् जान पड़ता है। देखती नहीं, एक दिन में ही कितना घुल-मिल गया! मुझे तो एहसास ही नहीं होता कि कल तक जो अजनबी था वह आज कैसे इतना आत्मीय बन गया!'

'यह गुण सबमें नहीं होता माँ!'—लता ने माँ की बात की ताईद की।

किशोरी माला ने कुछ और जोड़ दिया—'दिल का बड़ा साफ़ आदमी मालूम होता है, माँ! छली जरा भी नहीं

दिखता। देखो न, तनिक ज़ोर देने पर ही झट खाने को तैयार हो गया।'

'और कितने प्रेम से खाना खाया! जैसे अपना घर हो।' माँ ने फिर उसकी तारीफ़ की।

'मीठा का बड़ा प्रेमी मालूम पड़ता है। मिठाई उसने माँग-माँगकर खाई।'—लता ने कहा।

'हाँ, बिल्कुल बच्चों जैसा।'

माँ-बेटी कबतक बातें करती रहीं, किसी को भी पता नहीं मगर माला का मन जो बचपन और यौवन की सीमा-रेखा पर नाच रहा है किसी अज्ञात कल्पना की ओर उड़ चला। अजीत को उसने अपने घर के नीरस जीवन में रसराज सदृश पाया। जिस बालिका को पिता का प्यार न मिला, भाई का दुलार सुलभ न हुआ उसे एकाएक स्नेह का ऐसा स्रोत मिल जाएगा इसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। माँ को दुःख-धन्धा से फ़ुर्सत ही कहाँ कि माला को दुलारे! लता को भी कॉलेज की पढ़ाई से समय कहाँ कि बहन को ज़रा पुचकार दे! फिर ऐसे सूखे जीवन में एक अज्ञात रस की फुहार की प्रतीक्षा में माला चहक उठी—नाच उठी।

✣

'आज एक हफ्ता गुजर गया। दो दिन के बदले मैं सात दिन ठहर गया। अब चाहता हूँ आज रात ही चला जाऊँ। माँ इंतजार कर रही होंगी।'— ताँगे पर सवार अजीत ने लता-माला के सामने अर्जी पेश की।

'वाह जनाब! दो ही पिक्चर पर बस? अभी तो कल 'अछूत कन्या' देखना है और परसों 'विद्यापति'—तभी आपको घर जाने की छुट्टी मिलेगी!'—लता-माला ने आँखें नचाकर एक साथ यह प्रस्ताव पेश कर दिया।

अजीत परीशान है। स्वीकार करे तो मुश्किल, इनकार करे तो मुश्किल। इधर लता-माला का इसरार, उधर माँ की परीशानी, भाई की गार्जियनी।

'देखो लता, मैं अब यहाँ एक दिन भी नहीं ठहर सकता। भैया सुनेंगे तो मेरी खूब खबर लेंगे। एक हफ्ते की देर का हिसाब तो यह-वह कह कर चुका दूँगा, मगर इससे अधिक का

हीला चल न पाएगा। उधर माँ भी घबड़ा-घबड़ाकर जान दे देगी।'—अजीत ने बड़ी आजिजी से कहा।

'देखिए अजीत बाबू! आप कोई नादान नहीं कि आपको अब गार्जियनी की जरूरत हो। आप बी० एस-सी० में पढ़ते हैं। कल ग्रैजुएट हो जाएँगे। फिर ऐसे बचपने की बात क्यों करते हैं?'—लता ने कटाक्ष किया।

'मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ? मेरी परीशानी·······'

कि ताँगेवाले ने कहा—'बाबूजी, बुलानाला आ गया। देखिए, वही रही ऊँची हवेली—राजनारायण बाबू की कोठी। हाते के अन्दर तो ताँगा पहुँच न पाएगा।'

'बस, यहीं रोक दो।' कहता हुआ अजीत ताँगे से फाटक पर ही उतर कर राजनारायण बाबू की कोठी की ओर बढ़ा। लता-माला ताँगे में ही बैठी रहीं।

अजीत को देखते ही राजनारायण ने टोका—'वाह, अभी आप यहीं तशरीफ़ रखते हैं? मैं तो समझता था कि हजरत अबतक घर पहुँच गए होंगे।'

'नहीं यार, अभी यहीं चिपका पड़ा हूँ। रोज प्रोग्राम बनता है, रोज बिगड़ता है।'

'आखिर बात क्या है? खैरियत तो है!'

'हाँ, सब खैरियत ही है।'

# भागते किनारे

राजनारायण अबतक 'शेव' कर चुका था। हाथ-मुँह धोने को जब वह उठा तो अपने बारजे से देखा कि एक ताँगा खड़ा है और उस पर दो लड़कियाँ बैठी हैं। वह अनायास ही अजीत से पूछ बैठा—'क्यों, उस ताँगे पर तुम आए हो?'

'हाँ।'

'घर से कुछ लोग आए हैं क्या? यहीं ड्राइंग रूम में बिठा दो।'

'नहीं-नहीं.........उन्हें वहीं रहने दो......मैं तो अब जा......' अजीत ने जरा झेंपते हुए कहा।

'भाई, यह तुम्हारा ही घर है—उन्हें क्यों नहीं.........।'

'शायद वे बुरा मान जायँ.......।'

'कोई गैर थोड़े ही हैं—घर की ही तो हैं—।'

अजीत चुप हो गया। राजनारायण एक क्षण उसे निहारता रहा। वह तो उड़ती चिड़िया पकड़ ले। चट बोल उठा—'तुम नहीं बुलाते तो मैं ही उन्हें.........आखिर ये तुम्हारी हैं कौन?'

'.....................'

...............राजनारायण अजीत की कहानी मुस्कुराता सुनता रहा। उसकी उम्र भी अपने सहपाठी अजीत की ही होगी। मगर जिन्दगी के अनेकों अनुभव हो चुके हैं उसे।

आखिर बनारसी रईस जो ठहरा वह! अजीत जब अपनी कहानी कह चुका तो राजनारायण ने बड़े ज़ोरों का ठहाका लगाया और बोला—'यार, अब तुम भी उड़ती चिड़िया पकड़ने लगे? ऐसी तो मुझे उम्मीद नहीं थी। बड़े छिपे-रुस्तम निकले!'

'नहीं, ऐसी बात नहीं। भला मैं उन तक कब पहुँचता! यह तो एक दैवी घटना थी जिसने मुझे उनके समीप पहुँचा दिया।'

'समीप पहुँचकर भी तुम उनसे दूर रह सकते हो। फिर सटे क्यों जाते हो?'

'वह माला जो मुझे कभी छोड़ती नहीं। उस दिन संयोग से ऐसी भेंट हुई उससे कि अब जान पड़ता है कि मैं उसको जन्म-जन्म से जानता हूँ। मुझसे बड़ी घुल-मिल गई है और रात-दिन मुझसे चिपकी रहती है। अभी बड़ी भोली है। उसकी प्यारी-प्यारी मासूम सूरत किसे न रिझा दे! उसे जब देखता हूँ तो ऐसा भान होता है कि वह मेरे परिवार की ही कोई बालिका है। इन सात दिनों में उसने मुझे ऐसा बना दिया है कि जैसे मैं उसके हाथ का खिलौना हूँ। उसे मैंने कितने खिलौने भी दिए हैं मगर सबसे बड़ा खिलौना उसका मैं ही हो गया हूँ। समय पर जब खाने न आता हूँ तब डाँट पड़ती है,

कम खाता हूँ तब डाँट पड़ती है, उसकी पसन्द की चीज़ें जब न खाता हूँ तब डाँट पड़ती है और शाम को यदि उसे घुमाने या सिनेमा दिखाने न ले जाऊँ तब उसकी डाँट पड़ती है। वह एक अजब पहेली है मेरे लिए राज! जाने उस जन्म की मेरी संगिनी हो और एकाएक मुझे पाकर अब छोड़ना ही नहीं चाहती हो। और मुझे भी जाने क्यों इतनी ममता जग गई है उसके लिए....'

अजीत अपनी बातें कह ही रहा था कि राजनारायण उठ खड़ा हुआ और आँख मारते हुए बोला—'क्यों मुझे बेवकूफ़ बना रहे हो अजीत! माला नहीं, लता से तुम्हें लगाव हो गया है। तुम मुझे भुलावे में रखकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हो। बनो नहीं। लता का भूत तुम पर सवार हो गया है। तुम यहीं बैठो। मैं उन्हें बुलाकर ड्राइंग रूम में बिठाता हूँ, फिर लता का मुआयना होगा।—' बिना हिचक के उन्हें बुलाने को राज ज़ीने से नीचे उतर गया। अजीत टका सा मुँह लिए वहीं बैठा रहा।

लता-माला को लेकर जब राजनारायण ड्राइंग रूम में पहुँचा तो झेंपते हुए अजीत ने कहा—'लता, आप हैं मेरे अनन्य मित्र श्री राजनारायण। मेरे साथ ही पढ़ते हैं। एक ही कक्षा—एक ही सेक्शन में....'

'और एक ही रंग, एक ही क़द और एक ही सूरत—कहिए, और कुछ परिचय देना है ?' राजनारायण ने ठहाका मारते हुए कहा। फिर उसने अपने नौकर को बुलाकर ऑर्डर दिया—'रामरतन की दूकान से चार गिलास लस्सी लाओ। बालाई की तह उसमें पूरी रहे।'

लता ने बड़ी नम्रता से कहा—'आप तकल्लुफ़ क्यों कर रहे हैं……?'

'वाह साहब ! यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप मेरे यहाँ पधारीं। फिर इतनी भी खातिर… ?'

कुछ क्षण को कमरे में सन्नाटा छा गया। माला अजीत को देखती रही मानों इस नए वातावरण में उसे उसके सहारे की अपेक्षा हो और लता कभी राज बाबू को देखती और कभी बगल में खड़ी एक नग्न प्रस्तर-मूर्ति को। उसके चेहरे पर एक दीप्ति थी, आत्मविश्वास की एक गहरी रेखा। राज भी माला और अजीत को देखते-देखते कभी तिरछी और कभी पूरी नज़र से लता को निहार लेता। उसे कुछ ही क्षणों में भास गया कि माला—माला की तरह किसी के गले में या चरणों में लिपट कर अपनी नम्रता का सौरभ बिखेरती रहती है और लता—लता की तरह किसी के चरणों को छूते ही सर तक हावी हो जाने की क्षमता रखती है। फिर उस क्षणिक स्तब्धता को

भंग करते हुए राज ने पूछा—'क्यों लता जी, आप कहाँ पढ़ती हैं ?'

'यहीं बी० एच० यू० में सेकंड इयर में पढ़ती हूँ। आपने मुझे पहिचाना नहीं ? उस दिन वाद-विवाद प्रतियोगिता में मैं ही तो विश्वविद्यालय की तरफ़ से बोल रही थी। आप ही तो मेरी मेज पर एक गिलास पानी रख गए थे।'

राज जरा झेंपते हुए झट बोला—हाँ, हाँ, खूब पहिचाना। मैं जाने कबसे सोच रहा था कि आपको कहीं देखा है। लीजिए, मेरा अनुमान सही निकला।'

'माला भी मेरे साथ गई थी, क्या आपने इसे भी नहीं पहिचाना ?'

'नहीं, इसे मैं उस दिन देख न सका। बहुत भीड़ थी। और मैं ही यूनियन की तरफ़ से सारा प्रबन्ध कर रहा था।'

इसी बीच लस्सी आ गई। चारों ने गला तर किया। फिर बनारसी पान की गिलौरियाँ गाल तले दबाईं। इधर-उधर की चर्चा काफ़ी देर तक चलती रही। बाद में लता ने जाने की इजाज़त माँगी तो राज ने अपनी मोटर हाज़िर कर दी।

'वाह! आप फिर तकल्लुफ़ करने लगे! हमारा तो ताँगा····।'

'जी नहीं, आपका ताँगा कभी का जा चुका।'

'उसके पैसे ?'

'मेरे पैसे और अजीत के पैसे दो नहीं ।'

अजीत ने आपत्ति की—'वाह, यह तुमने क्या किया ?' पैसे तो मुझसे ले लेते !'

'अमां यार, छोड़ो भी यह पैसे की बात । यह तो बताओ, शाम का प्रोग्राम क्या होगा ?'

'तुम्हीं बताओ न !'

'तो चलो, आज चित्रा में 'विद्यापति' देखें—लाजवाब फिल्म है ।'

'ऐ लो, तुमने तो माला के मन की बात कह दी !'— अजीत ने कटाक्ष किया ।

'वाह, और अपने मन की नहीं ?'—माला ने शोर मचाया ।

'नहीं भाई, सबके मन की बात है—सबके । चलो, शाम का प्रोग्राम तय रहा । मैं ही आपलोगों को आकर 'पिकअप' कर लूँगा ।'—राज ने फैसला दिया ।

मोटर से पहुँचाने के बहाने राज ने उनका घर भी देख लिया । माला के घर अजीत भी उतर गया । दिन में उसका खाना वहीं था ।

✠

'इन्टरवल' में राजनारायण ने चार प्लेट आइसक्रीम ऑर्डर किया। राज की बगल में लता है, अजीत की बगल में माला। लता के कन्धों को थपथपाते हुए राज ने कहा—'कहिए, पिक्चर कैसी लगी ?'

'अबतक तो बहुत अच्छी लगी। क्या गाने और क्या ऐक्टिंग—दोनों कमाल के हैं। काननबाला ने तो जान डाल दी। उसकी आँखे ! ओह, अजब का स्फुरण है उनमें—'

'बिल्कुल आप जैसी !—' राज की नज़रों में शोख़ी है।

'ओ, तो यह बात है ? धन्यवाद !'—लता ने आँखें नचाते हुए कहा।

'कुछ मुझे भी धन्यवाद दो। आखिर बात क्या है ?'—अजीत ने उलहना दिया।

'कुछ नहीं, राज बाबू कानन की आँखों की तुलना मेरी आँखों से कर रहे हैं !'—लता ने कहा।

'ख्याल तो बुरा नहीं !'—अजीत ने जवाब दिया।

'तो आप भी दाद दे रहे हैं? शुक्रिया—'

तबतक आइसक्रीम आ गया। सभी रसना तृप्त करने लगे। बत्तियाँ भी गुल हो गईं।

खेल का दूसरा दौर शुरू हुआ। सभी के० सी० डे के गाने तथा कानन के ऐक्टिंग पर मुग्ध हो गए। अन्त का पुजारी-नृत्य तो घण्टों दिमाग़ में नाचता रहा। इतना हृदय-विदारक था वह। जब खेल खत्म हुआ तो कला की इस सरिता से किसी का भी जी बाहर निकलने को न चाहता था। सभी उसी में डूबते-उतराते थे। पर दूसरे शो का भीड़-भड़ाका तुरत ही शुरू हो गया और सीट छोड़ सभी को बाहर निकलना ही पड़ा।

बाहर खचाखच भीड़ है। कन्धे से कन्धे छिल रहे हैं। किसी तरह वे निकल कर मोटर तक पहुँचे। सभी गम्भीर मुद्रा में हैं। उस गम्भीरता को भंग करते हुए राज ने छेड़ा—'बड़ी उमस है और अभी तो नौ ही बजे हैं। चलो अजीत, इस चाँदनी में मोटर का हुड गिराकर युनिवर्सिटी तक मटरगश्ती कर आया जाय। बड़ा मज़ा आएगा।'

'नहीं-नहीं, राज बाबू! हमें घर पहुँचा दीजिए। माँ घर में अकेली घबड़ा रही होंगी'—लता ने आपत्ति की।

'ज्यादा देर न लगेगी। यही आध घण्टे-पैंतालीस मिनट। गर्मी की रात है। अभी देर क्या हुई है! क्यों माला जी, आपकी क्या राय है?'

माला मुस्कुराकर चुप हो गई। अजीत माला के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था कि राज ने चट कहा—'मौनं स्वीकृति-लक्षणम्—चलिए-चलिए, घूम आया जाय।'

फिर चारो मटरगश्ती को निकल पड़े। शहर की उमस से निकलते ही झर-झर लगते समीर ने अंग-अंग में स्फूर्त्ति भर दी। अनायास राज ने लता को छेड़ा—'लता जी, भगवान् किसी भी नारी को कुरूप न बनाए। कुरूप होना नारी के लिए सबसे बड़ा दण्ड है।'

'वाह, यह कैसी दलील है! पुरुष कितना भी कुरूप हो तो कोई परवा नहीं और नारी जरा भी कुरूप हो गई तो दंडित हो गई? वाह साहब, वाह! यह तो अच्छा रहा!'—लता की भौंहें तन गईं।

'लता जी, आप नाराज न हों। एक मिसाल ले लीजिए—यदि अनुराधा कुरूप होती, उसकी आँखों में वह उत्तेजना, वह मादकता न होती, तो लाख गले की काकली रहते भी आज विद्यापति में तन से तन न छिलते।'

'यह तो आपकी नजर रही राज बाबू! मगर जो कला का

सच्चा पारखी होगा वह कलाकार की कला, संगीत के सुर पर ही रीझ जाएगा। उसे आँख खोलकर सुने या आँख बन्द कर—उसके लिए दोनों बराबर है। के० सी० डे तो अन्धा है—सूरत भी जाने कैसा—मगर 'अनुराधा, ओ अनुराधा!' जब पुकारता है तो रोमाञ्च हो आता है और जब 'गोकुल से गए गिरिधारी, भई सूनी नगरी सारी'—छेड़ बैठता तो सारी मजलिस झूम उठती। ऐसा दर्द है उसके स्वर में—'

'मगर आप भूलती हैं कि वह पुरुष है।'

'फिर आप वही भूल कर रहे हैं। कला के प्रांगण में पुरुष और नारी के केवल रूप पर ही न जाइए। कला का पुजारी सूरत से उलझता नहीं, उसे तो स्वर चाहिए, लय चाहिए—'

'और सौंदर्य भी।'

'ज़रूर, मगर जो आँख को दिखता है, रुचता है, वहीं तक सौंदर्य सीमित नहीं है। जो आँख से न दिखता हो, जो हाथ से स्पर्श न होता हो वहाँ भी तो सौंदर्य है।'

'यहीं आप भूलती हैं। जो सौंदर्य आँखों में समा जाए, उसी में तो आकर्षण है—एक जादू।'

'आप भी कैसी बातें करते हैं,· राज बाबू? ज़रा गाड़ी इसी वीरान में खड़ी कर दें। कैसी सुहानी चाँदनी है और कैसा

सुन्दर समीर ! आप स्टियरिंग पर ही बैठे रहें। ज़रा मेरी भी मिसाल लीजिए।'

राज ने गाड़ी खड़ी कर दी। लता जोश में है। उसने माला से चट कहा—'माला, ज़रा सुना तो बहन—देखत हूँ अब बाट पिया की, जल से भरे मोरे नैन—शरमा नहीं, ज़रा छेड़ तो वह तान।'

माला ने रागिनी छेड़ दी। सारा वातावरण मुखर उठा। उसकी स्वरलहरी की करामात देखकर राज तो मन्त्रमुग्ध हो गया और अजीत चकित। उन्हें क्या पता था कि इस साँवली-सलोनी मासूम सूरत में इतनी सीरत है—इतनी सिफ़त है! राज तो स्टियरिंग पकड़े अपनी सीट पर बैठा-बैठा डूबता-उतराता रहा और बगल में बैठा अजीत माला के मुख पर उभरती वेदना की लहर को देखना चाहता है मगर चाँदनी में इतनी जोत कहाँ कि वह उसे देख सके! माला की स्वरलहरी उस निशीथ में बिजली की तरह कौंध जाती और दूर-दूर से लोग आकर मोटर को घेर कर बैठ जाते। पलक मारते वह सुनसान वीरान जन-समूह से गुलजार हो गया।

जब स्वर-गंगा की धारा बन्द हुई तो राज को जान पड़ा कि वह किसी तन्द्रा से जाग पड़ा है—कल्पना-लोक से नीचे

आ रहा है और अजीत तो अभी भी आँख मूँदे, लीन हो कुछ गुनगुना रहा है ।

फिर लता ने कहा—'बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई । राज बाबू, अब गाड़ी स्टार्ट कीजिए । ····देखा आपने—कला के पारखी बिना आँख से देखे ही यहाँ जुट गए और आँख मूँद कर रस लेते रहे····और आप भी तो उधर ही मुख किए किसी कल्पना में डूबे रहे । इस रात्रि में माला की सूरत को कोई ठीक-ठीक देख भी न पाया होगा परन्तु न देखकर भी उसके सौंदर्य पर सभी रीझ गए ।'

'कुछ न पूछिए लता जी, मैं हारा और आप जीतीं ।' राज गाड़ी स्टार्ट करता बोला । अजीत ने भी कहा—'राज, आज तुम कला और सौंदर्य पर बहस न छेड़ते तो मुझे माला की इस सुषुप्त प्रतिभा का पता न चलता ।'

'तुम भी क्या बात करते हो ! यह सुषुप्त नहीं, जाग्रत है—किसी जाग्रत देवी की वाणी के सदृश ।'

'जो हो, मगर मेरे लिए तो आज तक सुषुप्त ही थी ।'

✣

कल रात माला के घर से खाना खाकर लौटते-लौटते अजीत को काफ़ी देर हो गई थी और इसीलिए आज वह बड़ी देर तक सोता रहा। यदि मँगरू आकर दरवाजा न खटखटाता तो वह अभी घण्टों सोता रहता। बाबू को अभी भी पलंग पर ही पड़े देखकर होस्टल के चपरासी मँगरू ने पूछा—'क्या बाबू, तबीयत खराब है? आज बहुत देर....।'

'नहीं जी, कल रात सिनेमा देखकर लौटते-लौटते बहुत देर हो गई।'

'हाँ, कल कमलेश्वर बाबू और राजेश्वर बाबू भी बहुत रात गए आए। अभी दस नम्बर और आठ नम्बर के बाबू भी यहीं हैं।'

'वे कब जा रहे हैं?'

'आज चले जाएँगे। और आपका प्रोग्राम?'

'हम भी आज-कल ही में चले जाएँगे।'

'तो रुक क्यों गए बाबू आप ? वे लोग तो कोई इम्तहान दे रहे थे।'

'हाँ, मैं भी एक परीक्षा ही दे रहा था। आज उससे मुक्ति मिल गई तो कल चला जाऊँ।'

मँगरू अजीत की अटपटी वाणी नहीं समझ सका।

अजीत कुछ देर अपने में ही उलझा पड़ा रहा। फिर अखबार पढ़ने लगा और मन कल रात की घटना पर नाचने लगा—ओह, क्या दृश्य था वह! ऐसा जादू तो आज तक कभी देखा नहीं। कल्पनातीत घटना! माला में यह शक्ति! एक मासूम दिखनेवाली बच्ची में यह करामात! जब तक उसकी स्वर-लहरी गूँजती रही, सभी मूकप्राय हो रहे। स्वर का एक नया संसार उतर आया इस धरती पर। गले में यह थिरकन, यह कम्पन!………

रात भर उसकी गूँज कानों में गूँजती रही और अभी भी गूँज रही है। पारसाल भी रात भर संगीत-सम्मेलन देखकर भोर में लौटे थे। पर इसके आगे तो वह भी मात है। हैरान में है अजीत। उसे विश्वास ही नहीं होता कि माला के पास इतना सुन्दर गला है—ऐसी अद्वितीय चमत्कृत कला!

दस बजे जब वह माला के घर पहुँचा तो पाया कि माला आज सलवार-कुरता उतारकर एक सुफेद धुली हुई महीन साड़ी

पहिने, कुञ्जी के गुच्छे से खेल रही है। उसके खुले हुए घने केश कन्धे तथा पीठ पर छितरा गए हैं। चेहरे पर एक अनोखी दीप्ति है—औचक चमक। अजीत उसे देखते ही अकचका गया—'वाह, क्या तुम वही माला हो? रात भर में इतनी बड़ी हो गई? तुम बदल गई हो या मेरी आँखें ही बदल गई हैं?'

'साड़ी जो पहिने हूँ!'

'ओ, अब समझा—कपड़े में भी इतनी करामात है कि वह युवती को किशोरी बना दे और किशोरी को युवती! इस लिबास में तो कभी भी मैं तुम्हें साइकिल के कैरियर पर बिठा-कर घर पहुँचा न पाता!' —वह ज़ोर से हँस पड़ा।

माला का चेहरा शर्म से लाल हो उठा।

'माँ कहाँ हैं?'

'चौके में—'

'लता जी?'

'पूजा-घर में—'

'बड़ी पुजारिन बनी हैं, बात क्या है?'

इसी बीच लता चली आई तो अजीत ने फिर छेड़ा—'कहिए, शादी जल्द हो इसकी प्रार्थना अभी से हो रही है? कौन-कौन सी मिन्नतें मान रखी हैं आपने?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, माँ को पूजा करने की फुर्सत न मिली तो मैंने ही······हाँ, कहिए अजीत बाबू, कल रात का गाना कैसा लगा ?'

'कुछ न पूछिए लता जी, मुझे तो मालूम ही न था कि माला छिपी रुस्तम है। अब तो यह कहना मुश्किल है कि वह गीत अनुराधा ने सुन्दर गाया या माला ने। कल कानन की जगह पर यदि कहीं माला ने अभिनय किया होता तो सिनेमा-हॉल में टिकट के लिए मार पड़ती।'

माला का चेहरा गर्व से खिल उठा।

'राज बाबू तो कल काफ़ी छके। उनकी सारी दलील फिस हो गई।'—लता ने विजय की मुद्रा में कहा।

'कहा तो, मै हारा और आप जीतीं'—एक बुलन्द आवाज़ में कहते हुए राज नारायण ने कमरे में प्रवेश किया। सभी चौंक कर हँस पड़े। लता कुछ शरमा भी गई। उसने कभी सोचा भी न था कि ऐसा होगा। फिर अपने को जब्त करती हुई उसने झट कहा—'आपकी बड़ी लम्बी ज़िन्दगी होगी राज बाबू, आप ही की चर्चा चल रही थी कि आप पहुँच गए······'

'जी, मेरी बड़ी अच्छी चर्चा चल रही थी! शुक्रिया-शुक्रिया!'

लता ज़रा और झेंप गई।

'हाँ, माला को तो बधाई देना मैं भूल ही गया था। माला! वाह, गजब है तुम्हारा गला। तुम्हारी स्वर-लहरी रात भर मेरे कानों में गूँजती रही, मन में उमगती रही। यह उम्र और यह रेयाज, यह प्रतिभा! ओह, कमाल है!'

'हाँ, सचमुच माला के लिए उज्ज्वल भविष्य है। इस कला को और बढ़ाओ, फिर भविष्य तो तुम्हारे हाथ आकर रहेगा।'—अजीत ने भी दाद दी।

'राज बाबू! अभी तो आपने इसकी कला का एक ही पक्ष देखा है—अब दूसरा पक्ष भी देखिए।' कहकर लता माला की ओर मुड़ी और बोली—'ला तो अपनी सितार बहन, छेड़ एक मींड़ जो दिल को छू ले।'

माला गर्व और उल्लास से खिल गई। उसने झट सितार को उठाकर तारों को झनझना दिया। फिर तो उन बेजान तारों में ऐसी जान आ गई कि उस झङ्कार से सभी मन्त्रमुग्ध हो गए। उसकी उँगलियों की करामात ने तो सभी को पामाल कर दिया। एक झङ्कार, एक लहर, एक संवेदनशील मींड़ पर सभी झूम उठे। चौके का खाना छोड़कर उसकी माँ भी एक कोने में बैठ गई। अजीत तो फिर आश्चर्यचकित हो गया। सितार के तार-सी पतली इस किशोरी में इतनी क्षमता, इतनी कला! गले और उँगलियों में ऐसा जादू!

उसने तो इसकी कल्पना भी नहीं की थी। राज भी अवाक था। अमीरों की दुनिया उसने बहुत देखी थी मगर एक मध्यम वर्गीय परिवार में ऐसी कला देखकर वह दंग रह गया। जब माला ने सितार-वादन बन्द किया तो सभी एकबारगी कह उठे—'वाह ! वाह !! खूब ! क्या खूब !!'

'माला ! तुम तो कला का मूर्त रूप हो। तुम में दैवी शक्ति है—क्यों अजीत ?' — राज ने माला की तारीफ़ की।

'हाँ भई, यह तो कला की जीती-जागती प्रतिमा है।'

'बेटा, यह सितार इसके पिता का है। इसके पिता सितार के गुणी थे। इसको यह कला अपने बाप की विरासत में मिली है। जब यह बजाती है तो इसके पिता की तस्वीर मेरी आँखों के सामने नाचने लगती है।—आखिर वे भी क्या दिन थे !' माला की माँ की आँखें भर आईं।

'हाँ, माताजी, मैं कल्पना कर सकता हूँ कि जिसकी बेटी ऐसी कलाकार है, वह खुद कितना बड़ा कलाकार होगा। सच कहता हूँ—आपने अपनी बेटियों को बड़ी सुन्दर शिक्षा दी है। पढ़ना-लिखना, गायन-वादन सबमें निपुण—' राज ने कहा।

'हाँ, बेटा, यही तो मेरे धन हैं। इन्हीं को देखकर तो मैं जीती हूँ। लता के पिता जब से उठ गए मेरा जी बैठ गया। यदि ये दोनों न रहतीं तो मैं जाने कब की गंगा की गोद में

सो गई होती। मगर ममता के इन दो चिरागों को देखकर मैं अपना दुख भूली रहती हूँ। यह तो स्कूल की टीचरी मिल गई कि दोनों पढ़-लिख रही हैं और घर का भी खर्च निकल आता है—वरना……।'

माला की माँ के ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच आईं तो राज ने उस गम्भीर वातावरण को भंग करते हुए कहा—'माताजी, आप कुछ चिन्ता न करें। भला जिन्हें ऐसी गुणवन्ती बेटियाँ हों उन्हें क्या चिन्ता ! ···· चलिए, आज शाम को आपको बाबा विश्वनाथ के दर्शन कराता हूँ।'

'बड़ा पुण्य होगा बेटा ! चलो, बहुत दिनों से जाने को सोच रही थी।'

'तो राज, मुझे आज घर जाने दो। होस्टल बन्द हो गया'—अजीत ने कहा।

'तो मेरे घर चले आओ। वाह ! इतनी जल्दी तुमको जाने की इजाजत कैसे दे दी जाय ? क्यों माला ! क्या ख्याल है ?'

'हाँ, हाँ, बिल्कुल ठीक है। अभी घर जाने की जल्दी क्या पड़ी है ?'

'वाह !'

'वाह क्या, राज बाबू अभी आपको घर जाने की इजाज़त न देंगे।'—लता ने भी जोर भर दिया।

अजीत को कुछ ठीक-ठीक समझ में नहीं आ रहा है कि यह बात उसके मन की हो रही है या बे-मन की।

❖

बाबा विश्वनाथ के दर्शन कर जब घाट की ओर बढ़े तो सन्ध्या का शान्त वातावरण गंगा के कलेवर को घेर चुका था। राज का जी अभी घर लौटने को न था, इसलिए नौका पर घूमने का प्रस्ताव उसने सभी के सम्मुख रखा। गर्मी के दिनों में शहरी उमस से दूर गंगा में नौका-विहार करना भला किसे न अपनी ओर खींच ले ! सभी झट राज़ी हो गए। फिर राज अपने एक मित्र की खूब सजी नौका पर सबको बिठाकर गंगा की शान्त धारा पर नौका-विहार को निकल गया।

घाट छोड़ते ही गंगा पर बसी हुई महानगरी काशी का रंग-विरंगा दृश्य नज़र आने लगा। कुछ तो घाट के किनारे रंगरेलियाँ मना रहे हैं तो कुछ इहलोक-लीला संवरण कर सजी हुई चिता पर आराम से सो गए हैं। मन्दिर की शंखध्वनि तथा मस्जिद से उठता अज़ान दोनों रह-रहकर सुनाई पड़ जाते हैं। राग और विराग से मिश्रित यह नगरी दूर से कुछ और

ही दिखती है। कभी-कभी बगल से एक बजरा गुजर जाता है। आगन्तुकों को देखकर उसमें बैठे युगल-जोड़ी संभलकर बैठ जाते हैं। सारा वातावरण शान्त है—स्थिर। हवा भी स्थिर है।

फिर राज ने छेड़ा—'इतनी उमस क्यों है? हवे में भी थिरता है और आप लोग भी मौन बैठे इस उमस को और भी बढ़ा रहे हैं। कुछ बातें हों—कुछ क़हक़हे लगें—क्यों लता जी?'

'हाँ, आपका ख्याल तो अच्छा है। कल माला ने मजलिस को बाग़-बाग़ कर दिया, आज आप·······'

'वाह, कहाँ माला और कहाँ मैं—क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का शोरवा! मेरे गले में वह करामात—वह जादू कहाँ!'

'वाह, आप दोनों ने तो मिलकर माला को आकाश पर चढ़ा दिया। ऐसी तारीफ़ उसकी होगी तो वह रेयाज़ छोड़ देगी और अपने को उस्ताद समझने लगेगी। उसमें प्रतिभा चाहे जो हो, मगर बिना रेयाज़ के वह अधकचरी ही रह जाएगी।'

माला ने भी शर्माते हुए कहा—'हाँ, मेरी इतनी प्रशंसा नहीं होनी चाहिए वरना मैं कहीं की न रहूँगी। संगीत-कला का किला बड़ा विशाल है—मैं तो अभी उसकी देहरी पर ही हूँ।'

'तो क्या आप समझती हैं कि मैं भी संगीत-कला में आपके सदृश प्रवीण हूँ ? ना भाई, ना—'

'मगर मिज़ाज से तो आप बड़े शौक़ीन मालूम पड़ते हैं—गाना ज़रूर आता होगा'—लता ने कहा।

'बनो नहीं। तुम तो ख़ासे अच्छे गा लेते हो। छेड़ो वह तराना'—अजीत ने उसकी पोल खोल दी।

सभी ठहाका मारकर हँस पड़े।

'वाह, तो आप भी फ़रमाइश कर रहे हैं ?'

'फ़रमाइश नहीं, यह ऑर्डर है।'

'तो हुजूर का हुक्म सर-आँखों पर·········कहिए, क्या सुनाऊँ ?'

'वही···।'

शर्म और संकोच से भरे राज ने दूर कोने में बैठी माताजी की ओर दृष्टि दौड़ाई। उन्होंने हँसते-हँसते कहा—'गा बेटा, गा। मैं भी सुनूँगी।'

'मगर माताजी, आपके सुनने लायक भजन तो मुझे नहीं आता। मैं तो कुछ चलती-फिरती·······'

'अरे, कुछ भी गा—गा तो सही !'

राज ने छेड़ दिया—

'तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा
तेरे सामने मेरा हाल है
तेरी एक निगाह की बात है
मेरी ज़िन्दगी का सवाल है···
मेरी हर खुशी तेरे दम से है
मेरी ज़िन्दगी तेरे दम से है
मेरे दिल जिगर में समा भी जा
रहे क्यूँ नज़र का भी फासला···
कि तेरे बग़ैर तो जान जा
मुझे ज़िन्दगी भी मुहाल है····'

राज के गले में एक मीठा दर्द है। वह संगीत-शास्त्र से परिचित तो नहीं मगर उसके गले में ऐसा मोहन-मंत्र है कि सभी उस पर रीझने लगते हैं। काश, वह संगीत-शास्त्र में निपुण होता तो आज एक चोटी का कलाकार होता।

झिलमिल सन्ध्या का शान्त वातावरण, गंगा की मन्द धार पर बहती एक नौका, दूर किनारे पर बसा कोलाहल-भरा एक विशाल शहर, पार्श्व से गुजरती हुई नौकाएँ और इस वातावरण में गूँजती हुई राज के गले की स्वर-माधुरी सारे वातावरण में एक मस्ती बिखेर रही है। लता उसके चेहरे पर

उभरती हुई भावनाओं को बड़ी ललचाई दृष्टि से देख रही है और माला का अंग-अंग स्वर के लय पर थिरक रहा है। अजीत की आँखें मानों दूर किनारे शून्यता में कुछ ढूँढ़ रही हैं और मन में तो नाच रही है उस ग़ज़ल की एक-एक कड़ी ।

जब गाना ख़त्म हुआ तो लता ने तालियाँ बजाईं और माला ने 'वाह-वाह' की झड़ी लगा दी।

'राज बाबू! आप तो छिपे-रुस्तम निकले! यह गला, यह स्वर-लहरी! —मैं तो बाग़-बाग़ हो गई।' —लता की वाणी में एक मधुर विस्मय था।

'शुक्रिया, आपको मेरी चीज़ पसन्द पड़ी,—बस, मैं लाखों में हूँ।'—राज ने बड़ी आजिज़ी जाहिर की।

'आपके गले में एक अनोखापन है, एक दर्द है जो मुझे और कहीं न मिला।······आपकी आवाज़ में एक वेदना बसी है जो बरबस श्रोताओं को खींच लेती है अपनी ओर। मुझे तो इस ग़ज़ल की कोई भी कड़ी याद नहीं·········मैं तो आपकी स्वर-लहरी में इस तरह डूब-उतरा रही थी कि मुझे पता ही नहीं कि आपने क्या गाया, कैसे गाया—आपकी स्वर-सुरा का पान कर उन्मादिनी-सी मैं जाने क्या खोज रही थी, अपने अन्दर एक अजीब बेचैनी, एक नई अनुभूति पा रही

थी। पुरुष के स्वर में भी इतना माधुर्य्य हो सकता है—यह मुझे आज जान पड़ा……हाँ, मुझे जाने क्या हो गया है, कैसी प्यास उपट आई है कि चाहती हूँ कि आपकी स्वर-सुधा का फिर पान करूँ—बार-बार पान करूँ—वाह! क्या खूब!—बस, जादू है—जादू।'—लता इतनी सारी बातें एक सुर में कह गई।

माला सोचती रही कि इन बातों को जीजी ने आज इस तरह क्यों कहा……कुछ खोई-खोई-सी क्यों कहा—कभी सुदूर गंगा के किनारे सुनसान में कुछ खोजती हुई और कभी राज बाबू को ललचाती दृष्टि से देखती हुई? ग़ज़ल में उनकी आवाज़ में ज़रूर बड़ा आकर्षण था मगर जीजी ऐसी भावभंगी क्यों करने लगी, कुछ अजीब-सी?

'राज बाबू! अब ज़रा ग़ज़ल की कड़ी एक बार फिर तो दुहरा दीजिए—हाँ, गाकर नहीं तो यों ही सही, मैं भी सुनूँ आखिर आपने क्या गाया—क्या सुनाया!'

इतना कहकर लता बड़ी दर्दभरी दृष्टि से उसे देखने लगी।

राज मुस्कुराते हुए, कुछ भाव दिखाते हुए ग़ज़ल की कड़ी उसे सुनाने लगा।

'वाह ! लाख-लाख रुपये की पंक्तियाँ हैं। कहाँ मिलीं आपको ? किसकी बनाई हुई हैं ?......'

'मेरे पिता उर्दूदाँ थे। उन्ही की कॉपी में मुझे यह ग़ज़ल मिली थी। पढ़ते ही एक-एक शब्द मेरे दिल में चुभ गए जो आज मोतियों के दाने बन आपके सामने बिखर पड़े।'

'बिखर नहीं पड़े, गुँथ कर मेरे गले का हार बन गए !' —लता ने आँखों में आँखें डाल कर कहा।

'धन्यवाद ! मगर माला के सामने आप मेरी प्रशंसा न करें। कहाँ वह और कहाँ मैं !' —राज ज़ोर से हँस पड़ा और माला भी खिलखिला पड़ी।

'आप समझे नहीं राज बाबू, माला कली है और आप फूल। उसमें कोमलता है पर अभी कोई सौरभ नहीं आया। मगर आपकी सुरभि तो गंगा के सारे कछार में फैल गई है, मेरे तन-मन में व्याप गई है।'

'यह तो अपनी-अपनी नज़र है, मगर मैं अभी भी माला को अपना गुरु ही मानता हूँ।'

'भाई राज, माला के स्वर के विषय में क्या कहना ! वह तो स्वरमयी है। मगर आज तुम भी बड़े 'फॉर्म' में रहे। यह ग़ज़ल तुमसे मैंने कई बार सुनी है परन्तु आज तुमने जो समाँ बाँध दिया—आकाश से सितारे तोड़ लाए, वह मुझे

कभी भी देखने को न मिला। कमाल कर दिया तुमने !'— अजीत ने भी हँसते-हँसते कहा।

'ऐलो, गप्पें लड़ाते-लड़ाते हम घाट पर भी पहुँच गए। कुछ पता ही न चला कि इतना समय कैसे गुजर गया।' राज ने कहा।

फिर सभी घाट पर उतर गए। लता को लगा जैसे गंधर्व-लोक से छूटकर एकाएक ऊसर धरती पर आ गिरी।

अजीत जब होस्टल पहुँचा तो मँगरू ने एक तार दिया और कहा—'बाबू, बहुत देर से आपकी आस देख रहा था। आपके जाते ही तार आया था।

अजीत ने झट तार खोला और देखा कि भाई का तार है। माँ बीमार है—झट चले आओ।

तार पढ़ते ही माँ की विमल मूर्त्ति उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। माँ घबड़ा कर बीमार पड़ गई। ओह, कितनी ममता है उसमें! बार-बार कहती है 'अब तुम्हें ही देखकर मैं जीती हूँ। बस, एक आस और है। तुम्हें बहू के खूँट में बाँध कर कूच कर जाऊँ इस संसार से।' जब मैं घर छोड़ने लगता हूँ तो वह विह्वल हो जाती है और उसी दिन से मेरे लौटने के दिन गिनने लगती है। एक दिन भी देर करके

पहुँचता हूँ तो वह परीशान हो जाती है। और इधर इतने दिन गुजर गए, खबर भी न भेजी कि क्यों रुक गया।······ नहीं······नहीं·······आज चल ही देना है। माला की ममता इतने दिनों मुझे रोके रही—इस माया की डोरी को काटे बिना अब खैर नहीं। माला···माला···उस किशोरी के हृदय में मेरे लिए इतनी ममता······और मेरे हृदय में भी·······। मैं विना कहे चल दूँ तो माला छलन-छलन कर रह जाएगी। उसे बता देना जरूरी है।

उसकी नजर घड़ी पर पड़ी। ओह! रात की गाड़ी तो निकल चुकी। अब कल आठ बजे मिलेगी। तो अजीत, आज रात यहीं विश्राम करो। कल सुबह माला से विदा ले महानगरी काशी से विदाई ले लेनी है।

होस्टल की बिजली-बत्ती का कनेक्शन कट चुका था। कुच-कुच अँधेरी रात में एक घोर एकाकीपन, एक अजब भयानक जाल ने उसे घेर लिया। इस भयानक रात्रि में उसकी नींद हराम हो गई। आँखें खोलता तो काली कुचकुच रात और आँखें मूँदता तो माँ की सूनी-सूनी आँखें तथा माला का मासूम चेहरा एक दूसरे से टकरा कर उसे बेचैन कर देते। सुबह की सुफ़ेदी देखने को वह अक्सर आँखें

खोलता मगर तारों की ज्योति के सिवा कुछ भी नहीं दिखता। यदि मँगरू बगल में सोया खर्राटे न लेता रहता तो वह कब न होस्टल से डर कर भाग गया होता। बस, इसी उमस और उधेड़बुन में रात कट गई।

भोर की कुहेलिका ने अजीत के अन्तर की आग को और भी उकसा दिया। जाने कौन-सी मोह-माया उसे काशी छोड़कर जाने देना नहीं चाहती। एक अजीब कशमकश है। जाने और न जाने की भावना के बीच वह उबचुब हो रहा है। लगता है कोई 'अदृश्य' शक्ति उसे बरबस खींचे लिए जा रही है। काश वह शक्ति क्षीण हो जाती और उसका प्रस्थान टल जाता!

अजीत को इतने तड़के आते देखकर माला को ज़रा आश्चर्य हुआ।

'क्यों, ये आँखें लाल क्यों हैं? रात में सोए नहीं क्या?' ... माला ने जिज्ञासा दिखाई।

'माला, मैं अभी जा रहा हूँ। भाई का तार आया है। माँ बीमार है। मुझे झट बुलाया है।'—अजीत की आवाज़ बेजान सी है।

'गाड़ी कितने बजे है ?'

'आठ बजे—अभी।'

'और दूसरी ?'

'रात में नौ बजे।'

'तो रात की गाड़ी से जाना होगा।'—उसकी वाणी में अर्चना-प्रार्थना नहीं—एक 'कमांड' है।

'मगर, माँ........'

'अजीत बाबू, बारह घंटे में आखिर क्या हो जायगा ! घर पर तो सब लोग हैं ही। इतना सुबह बिना नाश्ता किए मैं आपको जाने तो दूँगी नहीं। नाश्ता बनाते-बनाते गाड़ी छूट ही जाएगी, इसलिए इतमीनान से रात में जाइए।'

और माला के इस इसरार या 'कमांड' को अजीत टाल न सका।

'आप बैठिए मेरे कमरे में—ये लीजिए आज के अखबार। पका नाश्ता बनाकर अभी लाती हूँ।'

'इतनी जल्दी क्यों ? लता जी को भी तैयार हो जाने दो। फिर साथ ही साथ— हाँ-हाँ, ताँगेवाले को पैसे तो....... ।'

'पैसे मैंने दे दिए। आपका सामान भी ऊपर रखवा लिय है'—लता ने आँखें मटकाते हुए कहा।

'इतनी तकल्लुफ़ क्यों! मैं तो पैसे देने जा ही रहा था। लीजिए, आपलोगों ने मेरा सामान उतरवा कर मुझे पूरा कैदी बना दिया। यह अच्छी साज़िश रही।'

'अजीत बाबू! आज दिन भर यहीं रह जाइए—कोई पानी में तो भींगते नहीं—यह घर भी अपना ही समझिए।'—लता ने कहा।

'जैसी आपकी मर्जी—'

अजीत बंडी उतारता वहीं पलंग पर बैठ गया।

चौके में जब माला गई तो आज उसने एक नई उमंग, एक नई स्फूर्त्ति का अनुभव किया। माताजी को भी आश्चर्य हुआ कि जो माला लाख बुलाने पर चौके में नहीं आती वह आज इतनी आसानी से कैसे चली आई! झट-पट पूरियाँ बेलकर छान लीं, एक सब्जी भी बना डाली और और नीचे चाटवाली दूक़ान से गरम-गरम जलेबियाँ लिए जब अजीत के पास पहुँची तो लता भी आश्चर्य-चकित हो गई।

'वाह माला! तूने तो आज बड़ी फुर्ती दिखाई! लीजिए अजीत बाबू, आज आपके चलते मुझे भी इतना सुबह नाश्ता मिल गया!'

अजीत को नाश्ता कराकर माला को बड़ा आनन्द आया। एक नई अनुभूति, एक नई मस्ती उसके सारे तन में छा गई।

बहुत देर तक खुशगप्पियाँ चलती रहीं। फिर माला ने जिद करके अजीत का बक्स खोला और सब कपड़े सहेजने लगी।

'हुँह, आपको कपड़े भी रखने नहीं आते! जैसे-तैसे सब भर दिए हैं।'

'मैंने नहीं रखे हैं—मँगरू ने ठूँस दिए हैं।'

'वाह, दूसरों के माथे खेलना कोई आपसे सीखे! उफ़, कहीं तेल की शीशी ढुलक रही है तो कहीं ब्लेड बिखरे पड़े हैं। अजीब तमाशा है!······छीः-छीः! ये गंजियाँ इतनी गन्दी क्यों हैं? इन्हें ज़रा कचार तो देते। राम! राम! लाइए मैं अभी साफ़ कर दूँ।'

माला ने अजीत के बक्स की पूरी सफ़ाई की। होल्डऑल को खुलवाकर फिर से ठीक से बँधवाया। रात में बर्थ पर बिछाकर सोने के लिए एक चादर और तकिया बाहर निकाल कर रख लिया।

दिनभर माला अजीत के इर्द-गिर्द घिर्नी की तरह नाचती रही। बक्स और होल्डऑल सहेजना खत्म होता तो उसके नहाने का प्रबन्ध होता। दिन का खाना समाप्त होता तो फिर साथ बैठकर ताश या कैरम खेलने का प्रोग्राम चलता।

ताश के खेल के दौरान में कभी वह अजीत को झिड़क देती तो कभी खुद झिड़की सुन लेती। बीच-बीच में लता की फटकार भी पड़ती—'बदतमीज़ कहीं की! अजीत बाबू के साथ बेईमानी करती है?—तुझे शर्म नहीं आती······?'

और तब उसकी आँखों में आँसू छलछला उठते पर अजीत की आँखें उन्हें देख न लें—वह झट अपने को सम्हाल लेती। अजीत जब देखता कि खेल का मज़ा किरकिरा हो रहा है तो कोई रंगीन लतीफ़ा सुनाकर सबको हँसा देता और फिर वही हँसी-खुशी की लहर सबके चेहरे पर दौड़ जाती।

लू की गर्मी शान्त होने को आई तो माताजी ने कहा—'बेटी, नीचे की दूकान से लस्सी तो मँगा लो। आज बड़ी गर्मी पड़ी है। तुम लोगों ने दिन भर शोर मचाया। एक घण्टे भी तो सो लेते।'

सन्ध्या समय माला ने अजीत से कहा—'चलिए, मेरे लिए कुछ अच्छी-अच्छी किताबें खरीदवा दीजिए। इतनी लम्बी छुट्टी तो काटे न कटेगी—एक आपका साथ था तो आप भी चल दिए—आखिर कितनी देर सितार से मन बहलाऊँगी!'

'और जब मुझसे जान-पहचान न हुई थी तब?'

'तब की बात और थी, अब की और। तब मुझे किसी से गप्पें लड़ाने की लत भी तो नहीं लगी थी!'

'मगर यह बड़ी बुरी लत है।'

'ऊँह—बला से—हो बुरी......?'

अजीत ने प्रेमचन्द तथा शरत् के उपन्यास माला के लिए खरीद दिए।

'माला! तुमने शरत् को अभी तक नहीं जाना है। वही हमारा सबसे प्रिय कथाकार है। प्रेमचन्द के साथ-साथ उसकी लेखनी का भी रसास्वादन करो। नारी-जाति के चरित्र-चित्रण में तो कोई भी उसके सामने ठहरने से रहा।'

'तो लाइए, 'शेष प्रश्न' से ही शुरू करें। वही न आपका 'फेवरिट' है! सुना है, कमल का चरित्र-चित्रण कमाल का है।'

'हाँ-हाँ, तुम्हारे मन को बहुत भाएगा। तुम उम्र की कच्ची जो हो, मगर तुम्हारा मानसिक विकास बहुत ज्यादा हुआ है। यही तुम्हारी विलक्षणता है।'

'वाह! तो मेरा चरित्र-चित्रण आप करेंगे क्या?'

'नहीं-नहीं।'

फिर दोनों हँस पड़े।

अजीत का प्रस्थान माला के लिए एक महान् अनुष्ठान के जैसा था। दिन भर उसी अनुष्ठान की तैयारी में लगी रही

## भागते किनारे

और जब वह प्रस्थान कर चुका तो उसे ऐसी रिक्तता लगी कि वह कुछ घड़ी के लिए शून्य-सी हो गई। घर का कोना-कोना उसे काटने दौड़ने लगा। सारे वातावरण में एक उदासी—एक पस्ती छा गई। सारे बदन में मीठा-मीठा दर्द हो आया और एक तन्द्रा में वह ऐसी सोई कि सुबह धूप निकलने पर भी बिना शोर मचाए न जगी।

✣

'मैं जानता था कि माँ बीमार न होगी — सिर्फ मुझे बुलाने को भैया ने तार दे दिया होगा।'— अजीत ने माँ के पैर छूते हुए कहा।

'ओहो, आ गए बेटा! युग-युग जियो मेरे प्राण! युग-युग जियो मेरे लाल!'—माँ ने तरकारी काटना छोड़कर उसे गले से लगा लिया।

'पहले यह तो बताओ, तुम्हारी तबीयत कैसी है?'

'जैसी बराबर रहती है वैसी ही आज भी है। तुमने आने में बड़ी देर कर दी और मुझे धड़का होने लगा। दमा तो मुझे है ही—उधर दवा से दबा था, कमज़ोरी पाकर वह भी उभर आया। एक दिन तो जैसे साँस ही टँग गई एकबारगी। किसी-किसी तरह ......'

'दोस्तों ने रोक लिया नहीं तो मैं कब का यहाँ आ जाता। हाँ, वही राज—तुम तो उसके यहाँ ठहर ही चुकी हो; जब

गंगा-स्नान को काशी गई थी, तुम्हें वहीं ठहराया था। मगर तुम नाहक इतना घबड़ा जाती हो। मैं तो भला-चंगा था।'

'माँ का हृदय तुम क्या जानो बेटा! एक दिन भी तुम्हारे आने में देर होती है तो मेरा दिल धड़कने लगता है। अब बहू के हाथ तुम्हें सौंप दूँगी तो चैन की वंशी बजाऊँगी। वही तुम्हारी देखभाल करेगी।'

'मैं खासा अच्छा हूँ—मुझे किसी गार्जियन की जरूरत नहीं—विवाह······उहूँ···बहू···धत्······'

'धत्-वत् नहीं, मैंने तुम्हारे लिए एक बड़ी सुन्दर बहू ढूँढ़ रखी है—फूल-सी सुन्दर—समझे?'

'क्या तमाशा खड़ा कर रखा है तुमने—जब सुनो तो वही बहू-बहू। दिन-रात उसी की माला जपा करती है।—लाओ, कुछ, खाने को भी तो दो। रात भर का भूखा हूँ।'

"बेटा, तार आते ही तुम्हारे लिए पकवान बनाने बैठ गई थी। देखो, आलमारी में तुम्हारे लिए इत्ती-सारी चीजें बना रखी हैं। तुम्हें तो बस मीठा चाहिए—तो लो, यहाँ मिठाई की ही भरमार है।"

'··················'

'तुम्हें तो ऐसी बहू चाहिए जो तुम्हें दोनों शाम मिठाइयाँ

बनाकर खिलाती रहे। तुम्हारी बहू को सब मिठाइयाँ बनाना सिखा दूँगी।'

'माँ, तुम्हें भी यह क्या धुन सवार है कि अभी से अपने बेटे के गले बहू का ढोल मढ़ दो। अरे, तुम्हारा अजीत पढ़-लिख कर सयाना हो जाय, कमाने-धमाने लगे तो शादी के लिए तो अभी तमाम उम्र पड़ी हुई है। अभी से·······'

'तू भी क्या बात करता है बेटा! समय पर तो तू कमाएगा ही। बहू को घर का बोझ क्यों समझने लगा? जैसे सब हैं—वैसे वह भी रहेगी।'

'ना माँ, ना। भाई के सर पर कितनी जिम्मेवारी मैं दूँ? सौ रुपए माहवार तौ मैं ही उनसे झींट लेता हूँ। फिर अब कितना·······।'

इसी बीच मुंशी रामलाल भी वहाँ चले आए। अजीत ने पैर छूकर भाई को प्रणाम किया। भाई ने भाई को गले लगा लिया। फिर बातें होने लगीं—'अजीत! माँ एक दिन बहुत बीमार हो गई थी। दमा का दौरा तो पहले भी हुआ है पर इस बार बड़ा भीषण था। मैंने घबड़ा कर तुम्हें बुलाने के लिए तार भेज दिया। मगर इस बार तो तुमने बड़ी देर लगा दी?'

'हाँ, राज ने रोक लिया था। रोज़ आने का प्रोग्राम बनता था और टल जाता था।'

'और मेरा तार न मिलता तब तो अभी कितने दिन....' भाई ने ज़रा व्यंग्य की मुद्रा में कहा।

'नहीं भैया, ऐसी कोई बात नहीं थी—मैं तो आजकल में ही ज़रूर चल देता। ........हाँ, भाभी मैके से कब आ रही हैं?'

'उनका भी तुम्हारा ही हाल है। शाहजहाँपुर से बराबर ख़बर आती है कि आज सवारी उठ रही है तो कल। अब देखो......'

'आज ही मैं भाभी को ख़त लिखता हूँ कि मैं आ गया—वह जल्द चली आएँ। रानी और मुन्ना बिना घर सूना लग रहा है।'

'देखो—शायद तुम्हारी कोशिश लग जाय।'

कुछ देर यों ही इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर रामलाल ने कहा—'अच्छा, जाओ, अब आराम करो—रात भर के जगे हो। तुम्हारी आँखें थकी लगती हैं।'

अजीत जब नहा-धोकर स्थिर हो सोने चला गया तो राम लाल ने माँ से पूछा—'क्यों माँ, सहारनपुरवालों को बुलवा

लूँ ? अजीत के दिमाग़ की क्या हालत है ? है ठीक-ठिकाने ?' रोज़ उनका तार आता है कि जवाब कब दे रहे हैं। मैं तो बड़े संकट में पड़ गया हूँ । अजीत की ही राह देख रहा था ।'

'बेटा, अभी तो अजीत पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता है। मैं तो समझती हूँ कि बिना तुम्हारी बहू के आए यह मामला ठिकाने न लगेगा ।'

'तो ठीक है, उसे आ जाने दो ।'

✠

अजीत का पत्र पाते ही रामलाल की बहू दौड़ी चली आई। आती भी क्यों नहीं, अपने नजदीकी रिश्तेदार की बेटी किरण से अजीत की शादी जो उसे करानी है!

'क्यों भाभी! बाजी लगा रखी थी क्या कि जब मैं आ जाऊँ तभी आप भी टपकेंगी?'

'नहीं छोटे लाला, इस बार मैके में एक मिशन पर गई थी।'

'ओ, अब समझा!⋯⋯तो फिर कहिए, क्या हाल है उस मिशन का? हो गया पूरा?'

'मेरा मिशन भी कभी अधूरा छूटता है?'—भाभी ने भाभी की आँखों से देवर को देखकर कहा। फिर मुस्कान को छिपाती, मुख-मुद्रा को कुछ गम्भीर बनाती हुई बोली—

'हाँ, वहाँ का मिशन तो पूरा हो गया, अब यहाँ का आपके भरोसे है—'

'मतलब ?'

'मतलब'''मतलब तो यह कि आपकी मंजूरी मिल जाय और शहनाई बज उठे !'

'ओह ! आप लोगों ने यह क्या षड्यन्त्र रच रखा है ? सबकी जबान पर एक ही बात, सबके मन को एक ही धुन—शादी जल्द-से-जल्द हो जाय ! आखिर क्या ऐसी बात आ गई है कि जब से आया हूँ देखता हूँ कि घर भर इसी को लेकर परीशान है। मैं तो आपलोगों का तमाशा देखकर भौंचक हो गया हूँ। माँ कहती है कि शादी कर लो, भैया कहते हैं कि भाभी के रिश्तेदार की जानी-सुनी लड़की है—जरूर शादी कर लो और आपने तो बस, सारी 'मिशनरी जील' ही लगा दी है !'

'और कोई बात नहीं छोटे लाला, माँ जी की तबीयत ठीक नहीं रहती है—उनकी आखिरी ख्वाहिश है कि आपकी शादी उनकी जिन्दगी में हो जाय—अब इसे अंजाम देना तो बस आपके हाथ में है।'

'..................।'

'और ऐसी सुन्दर बहू भी फिर न मिलेगी। लाख में एक

है। विधाता के अपने हाथ की बनाई हुई। मक्खन-सा रंग, कमल-सा कोमल और मिज़ाज ऐसा कि जिस साँचे में ढाल दो—ढल जाय।'

'....................।'

'लाला! ऐसी बहू अगर उठ गई तो फिर ढूँढ़ने पर भी मिलने की नहीं। आखिर बेटीवाले भी कितने दिनों तक इन्तज़ार करेंगे?'

'तो आपके कहने का मतलब यह कि ऐसी नायाब नेमत दुनिया में और कहीं मयस्सर नहीं और इसे छोड़कर ज़िन्दगी भर पछताना ही रखा है—क्यों?'

अजीत से ऐसे उपेक्षा-भरे उत्तर की आशा भाभी को न थी। उसे लगा, उसके ताश के महल पर किसी ने कंकड़ फेंक दिया। अपनी तिलमिलाहट को ताने-भरे मज़ाक में लपेट कर बोली—

'तो उलझ गई है आँख किसी और जगह क्या?····मगर लाला! जवानी की आँखें अक्सर धोखा खा जाती हैं—उन्हें अनुभव का अवसर ही कहाँ मिला! अनुभवी आँखें जिन्हें खोज लाती हैं उनसे धोखे का डर नहीं रहता। आपकी चीज़ में सूरत जो हो—सीरत न होगी।'

'अरे भाभी, सूरत तो कुछ यों ही रहेगी—मगर सीरत पर तो आप रीझ जाएँगी।'

'लाला, बातें न बनाइए। आप मुझे बातों के जाल में उलझा रहे हैं।'

'नहीं भाभी, मैं सच कहता हूँ।'

'नहीं-नहीं, झूठ।'

भाभी सच नहीं सुनता चाहती हैं। उन्हें सच को झूठ समझने में ही सन्तोष है।

अजीत को फँसाने के लिए पहले रेशमी डोर की वंशी फेंकी गई, तब जाल डाला गया, फिर महाजाल पड़ा; मगर वह फँसा नहीं, किसी तरह तैरता निकल भागा। हाँ, भाग तो वह गया मगर पर मारते-मारते बल पड़ गए और थकान की पस्ती कुछ ऐसी छा गई कि अगर इस साल शादी का लग्न मई के अन्त में ही समाप्त न हो जाता तो शायद भाभी के चकोह में दुबारे पड़कर तो वह निकल न पाता। इधर भाभी ने हार नहीं मानी। कोई बात नहीं, इस साल बाज़ी जिच रही—रहे! अगले साल तो वह चूकने से रही। फिर तो गोटी लाल होकर रहेगी। देखें, बच्चू कहाँ भागकर जाते हैं!

अजीत के घर चले जाने के बाद से माला की हालत अजीब हो गई है। बाहर-बाहर से उसे पता नहीं चलता कि आखिर हो क्या गया है उसे, पर भीतर टटोलती तो पाती कि ज़रूर कुछ हो गया है—कुछ खो गया है अन्दर की सतह से। उसकी वह स्फूर्त्ति, वह हँसी-खुशी जाने कहाँ उड़ गई एकबारगी और वह कुछ गम्भीर, कुछ अनमनी-सी हो गई है। कभी चुप्पी साध लेती तो घण्टों बोलने का नाम नहीं लेती और कभी सितार के तारों से उलझ पड़ती और उनसे ठीक-ठीक बोल नहीं निकल पाते तो सितार ही पटक देती। एक दिन तो इतने ज़ोर से पटक दिया कि फूटते-फूटते बचा।

आखिर लता ने एक दिन पूछा—'क्यों माला, जी अच्छा नहीं है क्या ?'

'नहीं, ठीक तो है।'

'पर तुम्हारा रंग-रवैया तो ठीक नहीं लगता। यह उड़ी-

उड़ी-सी क्यों रहती हो? ऐसी झल्लाहट और लापरवाही तो तुम्हारे स्वभाव में कभी रही नहीं। उस दिन सितार ऐसा पटक दिया कि फूटते-फूटते बचा। आज रविवार था और तुमने माँ के सभी पकवानों में नमक डाल दिया। बिचारी भूखी रह गई।'

'माफ़ करना दीदी, बड़ी गलती हो गई। बात यह है कि इधर शरत् की किताबों में मैं बेतरह खो गई हूँ, शायद उसी का असर हो।'

'यह कौन-सी नई बात है? किताबों में तो तुम बराबर ही खोती रही; मगर तुम्हारी बुद्धि तो ऐसी कभी खो न गई?'

उसने दीदी की सारी दलीलों को हँसकर टाल दिया।

माँ ने लता से कहा—'माला अब बच्ची नहीं रही, बड़ी हो रही है। वह बाल-सुलभ भोलापन कहाँ भाग गया—राम जाने। अब तो चुप-चुप बड़ी गम्भीर-सी रहने लगी है।' फिर माला से कहने लगी—'बेटी, तू अभी बच्ची है—इतनी सयानी अपने को कबसे समझने लगी? देख, गुड़िया खेलना तूने एकदम छोड़ दिया। मैं तो शादी के साल तक गुड़िया खेलती रही—गुड्डे-गुड़ियों का ब्याह रचाती रही और तू इसी उम्र से बूढ़ी जैसी किताबों में आँख गड़ाए रहती है। स्कूल खुलेगा तो पढ़ना। छुट्टियों में तो खूब खेल ले बेटी!'

'माँ, मैं अभी इसकी किताब छीनता हूँ। बड़ी पढ़नेवाली बनी है! मालूम होता है यही एक पढ़ाकू है और हम सब खेलाड़ी।' कहते हुए राज ने झपट कर माला के हाथों से किताबें छीन लीं। वह जाने कबसे खड़ा चुप-चुप बातें सुन रहा था और मौक़ा पाते ही झपट पड़ा। सभी चौंक उठे। फिर ठहाका मार कर हँस पड़े।

माला मुँह बनाने लगी—'इत्ता ज़ोर से झपट्टा मारा कि दो पन्ने फट भी गए—जाइए आप! बड़े आए हैं किताब छीननेवाले! धत् !'

राज ने किताब को दूसरे कमरे में छिपा दिया और कहा—'आप दोनों झट तैयार हो जाइए और चलिए मेरे यहाँ। मैं मोटर लाया हूँ। मेरी माँ से आज आप दोनों को मिलना है। बहुत दिनों से आप दोनों से मिलने को वह लालायित है। हमारे घर में बस एक ही प्राणी है और वह है मेरी माँ! उठो-उठो माला, झट तैयार हो जाओ। लता जी तो मालूम होता है नहा-धोकर जाने कबसे तैयार बैठी हैं।'

राज ने चाहा हाथ पकड़ उसे खींचकर उठा दे मगर उसके पहले ही माला उठ खड़ी हुई और 'नहाने जाती हूँ बाबा, जाती हूँ' कहती गुसलखाने में घुस गई।

लता ने देखा—राज बाबू का बनारसी गोरा रंग, देह पर चिकन का चमकता हुआ बंगला कुरता, दूध-सी धुली हुई सेनगुप्ता के नाखूने कोर की धोती, गले में सोने की एक पतली लड़ी और कलाई में सोने की क़ीमती घड़ी, मुँह पर पान के बीड़े की ललाई और सारे वातावरण में मादकता बिखेरती हुई सन्दल के इत्र की खुशबू।

हँस कर बोली—'राज बाबू! आज बड़े सबेरे बन-ठन के निकले हैं आप!—कहिए, क्या बात है?'

राज ने छूटते ही कहा—'बात क्या है! राज तो मन का राजा है! उसके मन में तो सदा बहार ही रहता है!—है कि नहीं?'

'हाँ-हाँ, क्यों नहीं? मुबारक हो आपका सदाबहार!'

'लता जी! मेरे पिता बचपन में ही मुझे एक विशाल धन का उत्तराधिकारी बनाकर चल बसे। मैं अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा हूँ। एक बहन भी नहीं। मेरे पिता की मृत्यु के बाद मेरी माँ मेरी संरक्षिका बनी। मुझे पिता का प्यार तो न मिला मगर माँ का दुलार भरपूर मिला और वह आज भी मिल रहा है। मुझे किसी बात की कमी नहीं, चिन्ता नहीं। अध्ययन तो मेरे लिए स्वान्तः सुखाय है। माँ तो कहती है कि अब कालिज की पढ़ाई बन्द करो और घर का

काम सँभालो····मैं बूढ़ी हुई—मेरी ज़िन्दगी में सब काम समझ लो, मगर मैं सोचता हूँ जितने दिन मस्ती और बेफ़िक्री में कट जाएँ—कट जाएँ। यह मौज किसको नसीब है? फिर मुझमें मस्ती न समाई रहे तो किसमें समाएगी? मेरे जीवन में कोई समस्या नहीं, संघर्ष नहीं। बस, यही समझो—उमंगों में भरे दिन हैं—उम्मीदों में बसी रात।'

'अरे! तो अब समझी—आप उम्मीद भी करने लगे, आस भी बाँधने लगे!'

'तो क्या बुरी बात हुई?'

'बात तो बुरी नहीं, पर लत बुरी है।'

'बला से!'

लता-माला जब राज बाबू की हवेली में घुसीं तो उसकी विशालता और लकदक देखकर चकरा गईं। उन्हें पता ही न था कि राज सचमुच इतना धनवान् व्यक्ति है। चकचक फ़र्श, झाड़-फानूस से जगमग छत। महरियों का हुजूम, नौकरों की क़वायद।

राज की माँ एक अच्छे व्यक्तित्व की महिला हैं, परन्तु इस बुढ़ापे में भी गहनों से लदी हैं। इसी संस्कार में पली हैं जो। उन्हें देखते ही लता के मन में झट आया कि राज ने माँ से ही इतना सुन्दर रंग लिया है।

'आओ बेटी, आओ, तुम दोनों से मिलने को जाने कबसे आस लगी थी। आओ, बैठो—माँ को क्यों नहीं लाई ?'

'माँ को तो घर के धन्धों तथा स्कूल से ही फुर्सत नहीं कि बाहर निकले—दिनभर खटती रहती है।'

'तो बिचारी गरीबी के बोझ से दबी हुई है।'

लता और माला दोनों को यह रिमार्क अच्छा न लगा मगर अपने को जब्त कर बैठी रहीं।

'बेटी! विधवा के कन्धों पर जब मर्दों जैसा सब भार आकर पड़ जाता है तो यही हाल होता है। मुझे ही देखो—आंगन से बाहर पैर निकाले महीनों हो जाते हैं। दिन भर दीवान जी जुटे रहते हैं। कभी किसी कागज पर दस्तखत करना है तो कभी रुपयों की गड्डी गिनवाकर तहखानों में रखनी है। पर्व-त्यौहार के दिन तो और आफ़त—दीया जलाकर तहखाने में घुसो और राधा-माधव के सब गहने निकालकर उनका शृङ्गार करो। रात भर सजग भी रहो कि कुछ ग़ायब न हो जाय। उधर चौके में जाकर छप्पनों प्रकार के राग-भोग की तैयारी अलग। लोग-बाग को प्रसाद बाँटते-बाँटते जान जाने की नौबत! और ज़रा भी गफ़लत हुई तो महरियाँ पूरियाँ अपने साए में चुराकर भाग निकलें। पूजा में मन क्या खाक लगे?

यह-वह का लगातार ऐसा झमेला है कि दिन-रात के चौबीस घण्टे इसी चक्करदार परीशानी में बीत जाते हैं।'

'माँ, इन्हें बात में ही बझाकर रखोगी या कुछ खिलाओगी भी ?'—राज ने माँ की बात की लम्बी डोर बीच में काट दी।

'हाँ-हाँ, ओ बुधिया ! ओ पियरिया ! अरी, कहाँ चली गई ? नाश्ता ला—जल्दी कर।'

बुधिया और पियरिया ने पहले चाँदी की चिलमची में उनका हाथ धुलाया, फिर गंगाजमनी कई तश्तरियाँ लाकर मेज पर रख दीं। घर की बनी सभी चीजें बड़ी लज़ीज थीं—घी से चुपड़ी, मसाले से भरी। राज ने बड़े चाव से उन्हें खिलाया और अपने भी लिया। ये बेसन के लड्डू, यह बालाई में बना बादाम का हलवा, यह लवंगलता, तो यह मुक्काझरी—एक पर एक सामने रखता गया। अभी जाने क्या-क्या उन्हें खिलाता यदि वे पेट भर जाने की शिकायत न करतीं। यह पेट भी जीभ का जन्मजात दुश्मन ही है !

नाश्ता के बाद माँ ने अपनी बड़ी गंगाजमनी पानदानी मँगाई और बनारसी पान के बीड़े लगाकर उन्हें खिलाए। फिर घण्टों बातें करती रहीं—सब अपनी ही, उनकी एक न सुनतीं। दोनों का मन जब ऊब उठा और वे जाने को तैयार

हुईं तो राज ने कहा—'माँ, अब तुम आराम करो—इन्हें पहुँचा दूँ। बहुत देर हो रही है!'

लता और माला को तो जैसे किसी कैद से नजात मिली। जल्दी से माँ के पैर छूकर हवेली से बाहर चली आईं।

दोनों को पहुँचाकर जब राज लौट गया तो लता की माँ ने पूछा—'बड़ी देर लगाई, राज की माँ बड़ी गपोड़ मालूम होती हैं। लता को तो उनसे खूब पट गई होगी!'

'अरी, कुछ न पूछो माँ! पूरे तीन घण्टे वह बूढ़ी माथा खाए रही। है तो बड़ी दिलचस्प औरत मगर बराबर अपना ही ओटे जा रही थी। दूसरे की सुनने को मुहलत कहाँ!'—लता ने हँसते हुए कहा।

'और माँ, उन्हें अपने धन का बड़ा गुमान है और साथ-साथ निर्धन के लिए मन में अपमान। उनका यह पक्ष मुझे जरा भी न भाया। हम गरीब हैं तो क्या, हमारा भी अपना एक आत्म-गौरव है, अपनी इज्जत-प्रतिष्ठा है। गरीबी पर उनका कटाक्ष मुझे बहुत खला। समाज में कोई धनी है, कोई निर्धन। अमीरी और गरीबी धूप-छाँह की तरह सब जगह मिली-जुली बिखरी हैं। अपना-अपना सुख-दुख अपने-अपने साथ है। मगर अमीर अगर ग़रीब और ग़रीबी का मखौल उड़ाए तो

यह समाज कैसे चले ? उनका यह झूठा गर्व निंदनीय है ।'—कहते-कहते माला गम्भीर हो गई ।

'माला ! बड़ी सयानी जैसी बोल रही है । उन्हें पैसा है; वह गर्व न करेंगी तो हम करेंगे ?'

'बात तो सही है; मगर उनके पास धन है तो रहे—मुबारक हो उन्हें यह धन—मगर इसका प्रचार करने की, यों इश्तहार बाँटने की क्या आवश्यकता है ?'—लता ने कहा ।

'और इस ढली उम्र में इस तरह के गहनों से लकदक । समझो कि गहनों के बोझ से दबी जा रही हैं । क्या तमाशा है ! मुझे तो यह सब नक़ल की तरह लग रहा था ।'—माला ने अपनी टिप्पणी पेश की ।

'यह तो कहो, नाश्ता क्या मिला ?'—माँ ने पूछा ।

'बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें—खूब जायकेदार । नाना प्रकार की । बर्फी, लड्डू, सिंघाड़े—और जाने क्या-क्या !····हाँ, राज बाबू भी अमीरी शान के 'जर्म्स' से अछूते नहीं हैं माँ ! अजीत बाबू और राज बाबू में यही तो अन्तर है । अजीत बाबू बाहर और भीतर एक-से हैं, मगर राज बाबू में यह बात

नहीं। यहाँ तो हमलोगों से खूब हिल-मिल जाते हैं मगर ऊँची हवेली में तो ऊँचे-ऊँचे से दिखते रहे—क्यों जीजी…'

'तू बहुत बाल की खाल निकालती है माला! इसी उम्र में इतनी छान-बीन! मैं तो बातों में ही उलझकर रह जाती हूँ। मुझे नहीं मालूम कि कौन कैसा है।'—कहती हुई लता ने बातों का सिलसिला बदल दिया।

समय-सरिता की अखंड धारा अपनी अबाध गति से सदा बहती चली जाती है। कोई भी रोड़ा उसमें रुकावट नहीं डाल सकता, कोई भी ज़ोर उसे पलट नहीं सकता। प्रकृति के नियम अटूट हैं, समय का प्रवाह अविरल है। सूरज प्रतिदिन निकल कर ही रहेगा—रात भींगती-भींगती उषा की लाली में सिमट ही जाएगी। ग्रीष्म की लू की लौ उगलते वे बदन झुलसाते दिन बीत ही गए, पानी से कण्ठ तर करते ज्यों-त्यों छटपट में पड़ी रातें भी कट ही गईं। फिर 'आषाढस्य प्रथमदिवसे'—वर्षा की फुहार से ताप-तप्त धरती को साँस लेने की राहत मिली और माला को भी एक आस-भरी टकटकी लग गई—२२ जुलाई अब दूर नहीं जब अपनी आँखों में सरस स्नेह की सिंचाई लिए अजीत बाबू भी अपनी लम्बी छुट्टी बिताकर यहाँ पहुँच जाएँगे और तब यह उदासी की ऊब-भरी उमस कपूर की तरह उड़ जाएगी।

और आ गए अजीत बाबू।

'अजीत बाबू! आ गए आप? ठीक २२ को ही आए। दो-एक दिन पहले ही आ जाते तो कौन चाँद-सितारे आसमान छोड़ भाग जाते?'—लता ने अजीत को देखते ही आँखें नचा कर कहा।

बगल के कमरे में माला अपने उलझे केश सुलझा रही थी। दीदी की आवाज़ कान पर पड़ते ही वह कंघी लिए दौड़ी चली आई। प्रतीक्षा में कब की आकुल आँखें चार हुईं और मुस्कुराकर एक दूसरे ने अभिवादन किया। हाथ जोड़कर प्रणाम करने का शिष्टाचार इस आनन्द के उत्स में उलझकर रह गया। इस औपचारिक विधान के व्यवधान को आँखों के आनन्द-सलिल ने गला दिया। हाँ, माला की इस अशिष्टता पर लता खीझ-सी गई मगर कुछ बोली नहीं।

'कहिए घर का कुशल-मंगल।'—लता ने फिर बड़ी आत्मीयता से पूछा।

'सब आपकी कृपा है। सभी स्वस्थ और प्रसन्न हैं।'

'माँ?'

'वह भी अब अच्छी है।'

'एक खत तक न भेजा। और नहीं तो माँ के विषय में तो लिख देते।'

'खत लिखने को सोचते ही सोचते छुट्टी बीत गई।....हाँ, यहाँ माताजी कैसी हैं?'

'आज स्कूल खुल गया न—वहीं गई है। अच्छी ही है।'

'अच्छा, सामान आपका?'

'बाहर ताँगे में है।'

'क्यों?'

'अभी होस्टल में रूम न मिला होगा इसलिए सोचता हूँ राज के यहाँ ठहर जाऊँ।'

'और यहाँ ठहरने में कोई आपत्ति है क्या?'

'आपत्ति तो नहीं, मगर आवश्यकता क्या है?'

'माला, नीचे जाकर ताँगेवाले से बोलो कि बाबू का सामान ऊपर रख जाय। यहीं से होस्टल चले जाएँगे। दो-चार रोज़ में तो रूम मिल ही जाएगा।'—लता की आवाज़ में एक कमान्ड की ध्वनि थी। अजीत बिना किसी हीला-हवाला के वहीं

रह गया। और माला—यह बात उसके मन की हुई या नहीं, यह तो वही जाने।

लता अजीत के लिए नाश्ता-चाय लाने चली गई। अजीत हाथ-मुँह धोकर शृङ्गार-आइने की बगल में कुर्सी खींचकर बैठ गया और केशों को सँवारती हुई माला से पूछा—'क्यों माला, मैं तो हैरत में हूँ। जबसे आया हूँ, यही गौर कर रहा हूँ कि तुम तीन महीने में ही इतनी बड़ी कैसे हो गई! लगता है जैसे कोई दूसरी माला हो! एकबारगी इतना फ़र्क़! वाह! क़ुदरत की भी शान निराली है। देखते-ही-देखते छू-मन्तर की तरह किशोरी को युवती बना देती है और उधर यौवन के चिलमन से बुढ़ापा भी झाँकने लगता है।'

'अजीत बाबू, आपकी आँखें ही बदल गई हैं, मैं तो वही की वही हूँ।'

'तुम वह हो या यह हो, यह तो तुम जानो। माँ ठीक ही कहती है—बेटी की बाढ़ को कोई भी तदबीर रोक नहीं सकती।'

माला केश सँवार रही है। अजीत अखबार उठाकर पढ़ने का बहाना करता है मगर उसकी आँखें बरबस माला के उस सुन्दर ललाट की ओर दौड़ जाती हैं जिस पर वह एक हलकी

बिन्दी उगा देती है—अपने सहज शृङ्गार की पहली कड़ी जैसी।

'बड़ी देर लगाई आने में—कोई कुशल-क्षेम भी नहीं लिखा इतने दिनों से'—वह एक सुर में लजाई-लजाई कह गई।

'माँ आने ही न देती थी—बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। घर पर एक पूरा हंगामा था। किसी तरह भाग कर चला आया।'

'हंगामा कैसा?'—माला ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

'बड़ी लम्बी कहानी है—इतमीनान से कहूँगा।……हाँ, तुम कैसी रही?'

'खूब ठीक। दिन-रात आपकी दी हुई शरत् की पुस्तकों से लिपटी रही। वे न रहतीं तो मज़े में दिन न कटते।'

'मेरे दिन तो पहाड़ जैसे लद गए थे। काशी की यादें बड़ी सताती रहीं। उन दिनों तो…।'

'इसीलिए शायद इतनी देर करके आए! मन ऊब रहा था तो क्यों नहीं जल्दी चले आए? यहाँ नहीं तो राज बाबू के यहाँ ही ठहर जाते। इधर राज बाबू खूब आने-जाने लगे हैं। उनके साथ घुमाई डटकर होती है। कभी-कभी हम उनके घर भी हो आती हैं। उनकी माँ बड़ी दिलचस्प महिला हैं।'

'ओ! तो राज तुमलोगों से काफ़ी हिल-मिल गया। बड़ा

भला लड़का है। हमारा तो बड़ा पुराना मित्र है। हाँ, तुम लोग उससे ऊब तो नहीं गईं? कभी-कभी बड़ा 'बोर' कर देता है। मज़ाकिया लोग कभी-कभी दायरे से बाहर भी चले जाते हैं।'

'नहीं, हमारे साथ उनकी कभी कोई वैसी हरकत नहीं हुई। आदमी तो बड़े भले मालूम पड़ते हैं—हाँ, बड़ी हवेली की हवा का असर तो कुछ ज़रूर है……और वह स्वाभाविक ही है।'

वह बड़े ज़ोर से हंस पड़ी तो अजीत कुछ चकरा गया। हँसने की तो कोई ऐसी बात नहीं हो रही थी। पूछा—'वाह, हँस क्यों पड़ी?'

'एक बात याद आ गई।'

'क्या?'

'एक दिन हमलोगों ने आप दोनों का तुलनात्मक अध्ययन शुरू किया………आप फूलेंगे नहीं—हमने एक मत से आपके ही पक्ष में वोट दिया।'

'धन्यवाद। मगर इस चुनाव की आवश्यकता क्या थी?'

'बस, यों ही। बात की बात में आप दोनों टपके पड़े तो हमलोगों ने भी सोचा, अपना निर्णय आज ही दे दें।'

'भला किया या बुरा, यह तो आप जानें मगर यह किस्सा

सुनाकर आपने मुझे सातवें आसमान पर चढ़ा दिया। एक वोट भी मेरे विपक्ष में नहीं आया? तब तो मैं भी कुछ हूँ!'

लता चाय-नाश्ता लिए चली आई। अजीत ने उसके हाथ में ट्रे लेकर मेज पर रख दिया।

चाय की चुस्की लेते-लेते अजीत एक असीम शान्ति का अनुभव कर रहा है। लगता है एक भयानक तूफ़ान से लड़ कर वह अपने घोंसले में लौट आया है। हाँ, उसके डैने टूट-से चले हैं—उनमें अब नई शक्ति, नई स्फूर्ति जगानी पड़ेगी। और, वह जाने किस अनजान कल्पना में खो चला।

✣

दिन भर होस्टल में सीट तथा ऐडमिशन के फेर में चक्कर काटता थका-सा अजीत जब घर लौटा तो देखा, माला उसके लिए नाश्ता-चाय तैयार किए बैठी है।

'क्यों, आज घर बड़ा सूना-सूना-सा लगता है। बात क्या है?'

'माँ-दीदी बाहर गई हैं। आपको नाश्ता कराने की आज मेरी ड्यूटी है। जाने कबसे इन्तज़ार कर रही हूँ।'

'क्या बताऊँ, होस्टल में जगह आज भी न मिली। दिन-भर दौड़ता रहा। वी० सी० के कमरे में वार्डन जो दो बजे से बैठा तो अभीतक न निकला। शायद कोई मीटिंग चल रही हो। दो-चार रोज़ फिर मामला टला। कल तो रविवार ही है और परसों कोई पर्व-त्यौहार।'

'तो घबड़ाहट क्या है ? कोई पानी में तो भीगते नहीं ! यह घर किसी ग़ैर का है ?'

'मगर इस तरह कितने दिन…'

'वाह, लखनऊ का असर शायद आप पर भी पड़ गया है। बहुत तकल्लुफ़ कर रहे हैं।'

'नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। लाओ, एक प्याली चाय—।'

'नहीं, पहले यह सिंघाड़े और छोले—तब चाय…'

'वाह, बड़े लज़ीज हैं सिंघाड़े, चाटवाली बुढ़िया बनाती है चीज़ें अच्छी…'

'जनाब, चाटवाली की नहीं, यह आपके सामनेवाली की कला है !'—माला ने अजीत की आँखों में कुछ ढूँढ़ते हुए कहा।

'ओह ! तो तुम भी सिंघाड़े बनाना सीख गई ? कमाल है !'

'और छोले भी—'

'इसमें ज़रा और नीबू निचोड़ दो तो मज़ा आ जाएगा।'

'तो खट-मिठ का स्वाद आप भी लेने लगे ? पहले तो नाक-भौं सिकोड़ते थे।'

'सब तुम्हारी कृपा है !'

अजीत जब चाय का सिप लेने लगा तो माला ने पूछा—'हाँ, आपने अपने घर का वह किस्सा तो सुनाया नहीं ?—कैसा क्या हंगामा·········कौन-सी वह घटना थी ?'

'अरे, छोड़ो भी, पीछे कभी—'

'जैसा कभी, वैसा अभी····कह ही डालिए·······'

अजीत कुछ गम्भीर हो गया। एक क्षण चुप रहा, फिर माला की ओर देखते हुए बोला—'मेरे घर पहुँचते ही माँ ने पहला 'बम' छोड़ा—'शादी कर लो, तुम्हारी शादी ठीक हो रही है—भाभी के रिश्तेदार की लड़की से। आज ही 'हाँ' कह दो।'

माला चुप।

'मैं परीशान रहा। यह गाज कहाँ से आ गिरी ! झट 'ना' कह दिया। माँ नाराज़ हो गई। फिर पैरवी शुरू हुई। जाने कितनी बन्दिशें बाँधी गईं। भाभी बुलाई गई, लड़की का फोटो दिखाया गया, उसके घरवाले भी पहुँच गए। मैं तो एक चक्रव्यूह में पड़ गया। कहीं से निकल भागने का रास्ता नहीं।

उब-चुब हो रहा था। उधर माँ आँसू बहाने लगी। मगर ईश्वर को मेरी हालत पर दया आ गई। शादी का लग्न ही न मिला और मैं बेदाग़ भाग निकला।'

'क्या तमाशा है—शादी आपने कर क्यों न ली? नाहक माँ का दिल दुखाया!'—माला ज़ोर से हँस पड़ी।

'तुमने भी अच्छी राय दी!'

'हाँ, सच, अच्छी लड़की थी तो शादी करने में क्या हर्ज था? फोटो तो आपने देखा ही होगा—क्या लड़की अच्छी नहीं थी?'

'कुछ वैसी ही थी।'

'तो फिर इतना तूल क्यों?····हाँ, अजीत बाबू! हमें आप अपनी शादी में बुलाते या नहीं? यदि नहीं बुलाते तो ज़िन्दगी भर आपको कोसती। मेरा तो अनुमान है कि आप कदापि नहीं बुलाते। चट मँगनी पट ब्याह हो जाता और हम, दीदी और माँ यहाँ टके-सा मुँह लिए बैठी रह जातीं।'—माला फिर ज़ोर से हँस पड़ी।

'तुम भी मज़ाक करती हो माला?'

'देखिए, आप नाराज़ हो गये अजीत बाबू! मैं मज़ाक नहीं—सही कह रही हूँ। इतना हंगामा हुआ मगर आपने

एक खत लिख कर भी हमारी राय न पूछी—शायद कतराना चाह रहे होंगे।'

'तुम्हें ग़लतफ़हमी हो गई है।'

'लीजिए, उलाहना को आप ग़लतफहमी समझ रहे हैं। मैं कहती हूँ कि आपको अपनी शादी में मुझे तो ज़रूर बुलाना होगा—अगर नहीं बुलाइएगा तो ज़िन्दगी भर के लिए साहब-सलामत बन्द।'

'अच्छा बाबा, अच्छा! उसके लिए आज ही क्यों झगड़ा कर रही हो? समय आने दो।'

'झगड़ा क्यों न करूँ! समय आते-आते टल गया। वरना आप तो चुप्पे-चोरी विवाह कर ही लेते।'—माला ने ज़रा गम्भीर बनकर कहा।

'तुम्हारा दिमाग़ खराब हो गया है। उलटी-पुलटी बातें करती हो।''''''चलो, चलो छत पर। वहीं मेरा प्रिय गाना मुझे एक बार फिर सुनाओ'''।'

'वाह! बड़े भावुक बन रहे हैं आज! कहाँ की चर्चा और कहाँ आ गिरी!'

'हाँ-हाँ, चलो, एक शीतलपाटी ले लो, छत पर बिछाकर बैठेंगे। इस कमरे में मेरा मन ऊब रहा है।'

माला ने शीतलपाटी अजीत को थमाई और खुद तानपूरा लेकर छत पर चली आई।

सन्ध्या की धुंध महानगरी काशी पर छा गई है। छत पर से दूर तक फैली हुई काशी नगरी धुएँ के अन्दर घिरी-घिरी दिखती है। बिजली-बत्तियाँ धुएँ की चिलमन से झुक-झुक झाँक रही हैं। सँकरी-लम्बी गलियों में भीड़ का ताँता अभी भी उमड़ा चला आ रहा है। अजीत चाहता है कि इस भीड़-भाड़ से दूर नीले स्वच्छ आकाश के नीचे एकान्त में शान्ति की साँस ले।

'माला! सावन का आकाश आज बड़ा शुद्ध और निर्मल है। इसी के नीचे बैठने का बड़ा मन कर रहा है। देखो, अब चाँदनी छिटकने ही वाली है। आज शायद चतुर्दशी है। पार्थिव से दूर रह कर आज प्रकृति के समीप रहने की मेरी प्रवृत्ति हो रही है। चलो, छत के बीचो-बीच बैठें ताकि नीचे शहर का एक अंश भी दिख न पड़े। सारी पृथ्वी में अम्बर ही अम्बर रहे और उसमें गूँजती रहे तुम्हारी स्वर-लहरी।'

सन्ध्या और रात्रि की इस संगम-वेला में माला ने जैंजैवन्ती की धुन छेड़ दी—

'मोरे मन्दिर अबलों नहीं आए—
कबसे खड़ी हूँ मोरी आली....'

उसकी स्वर-लहरी में उसकी आन्तरिक वेदना की अनुभूति न रहती तो वह किसी के मर्म तक नहीं पहुंच पाती ।

स्वर के इस माधुर्य से उसे निस्सीम शान्ति मिल रही है और उसके अंग-अंग में एक शिथिलता समा गई है । वह उसी शीतलपाटी पर अर्धचेतान की अवस्था में लेट गया और माला एक कोने में तानपूरा लिए अपने में डूबी हुई राग-रागिनियों के ज्योति-पथ पर तिरती चली जा रही है ।

✣

हॉस्टल में कमरा मिलते ही अजीत माला के घर से चला गया मगर शाम को अक्सर वह उसी के घर चला आता और गप्पें लड़ाकर या कहीं घूम-घाम कर रात में लौट जाता। यह उसकी दिनचर्या जैसी हो गई है और वह अनायास इस प्रोग्राम की पाबन्दी से बँध गया है।

माला के घर-परिवार से वह घुल-मिल भी तो गया है। उनका सुख-दुख उसे भी व्यापता और अपनी समवेदना से वह उन्हें सुख देता। उस घर का वह भी एक अंग हो गया है और माला की माँ के लिए तो वह सहारा ही है। माला को उसने इतना प्यार दिया है, इतना सद्भाव कि वह दिनों-दिन उसके और भी समीप आती जा रही है। उनकी हँसी-खुशी में राज भी आता, नित-प्रति आता, मगर जल-कमल सा रहता। उनके जीवन में पैठने की क्षमता उसमें न थी—

वह उनसे बहुत दूर था। और बात भी ठीक ही है, एक ही सितार के तार एक सुर में बोल पाते हैं।

आज अजीत सन्ध्या-समय माला के घर आया तो माताजी ने बड़ी नम्रता से कहा—'बेटा, बड़े समय पर आए, लता और माला को अभी एक शादी में जाना है। रात में इतनी दूर उन्हें अकेली भेजना······इतनी दूर···कैसे क्या होगा? मैं तो शाम को स्कूल से थक कर चूर आती हूँ। क्या तुम···'

'··················'

'इतना समय दे सकोगे?'

'माताजी! मैं चला तो जाता मगर कल एक टेस्ट है—अभी तक कुछ पढ़ न पाया।'

'तो जाने दो बेटा, मैं ही कुछ देर आराम कर उन्हें घुमा लाऊँगी।'

माला ने मुँह बना लिया। अजीत ने इसे देखा भी। वह उनके साथ जाना भी चाहता है परन्तु फाइनल इयर और कल के टेस्ट का भूत सर पर सवार है। माता जी की दयनीय स्थिति देखकर उसको दया भी आ रही है। क्या करे? कैसे करे? वह भी असमंजस में है।

कि लता ने चट कहा—'माँ, तुम बेकार फिक्र करती हो।

हमलोग चले आएँगे। इतनी लड़कियाँ गई हैं, किसी के साथ हो लेंगे।'

'और यदि किसी ने लिफ्ट देना स्वीकार न किया तो?' —माला ने टोका।

'तो ताँगा कर लेंगे।'

'दीदी, तुम भूल रही हो। शादी-ब्याह में समय अपने हाथ का तो होता नहीं। रस्में शुरू होती हैं तो पूरी रात यों ही निकल जाती है। कब हमें छुट्टी मिले और कब····कुछ समझ में नहीं आता। और अजीत बाबू को भी वहाँ कितनी देर ठहराया जाएगा?'

'तुमलोग बेकार बेसिर-पैर की सोचने लगती हो। चलो न मेरे साथ, मैं कोई रास्ता जरूर निकाल लूँगी। जहाँ चाह है वहाँ राह भी है।'

माँ अबतक चुप थी। लता की तेजी पर वह बोल उठी—

'यह अच्छी रही! तुमलोगों को अकेली भेजकर क्या मैं शान्ति से सो सकूँगी? मेरी नींद हराम हो जाएगी और एक पैर आँगन में रहेगा तो दूसरा दरवाजे पर। बेटी की माँ का उत्तरदायित्व ये कालिज की छोकरियाँ क्या जानें? जब माँ बनेंगी तब माँ का दर्द समझ पाएँगी!'

लता जाने को कमर कसे बैठी है, माँ उन्हें अकेली जाने देना नहीं चाहती और माला बिना किसी को साथ लिए जाने से डरती है। एक अजीब झमेला खड़ा हो गया है। अजीत की नजर लता की दृढ़ता पर जाती, माँ की बेबसी पर जाती और माला की सहमी हुई सूरत पर जाती। वह तीनों को देखकर फिर अपने आप को देखता। अपने में वह माला की दो सहमी हुई आँखें देखता, एक भीरु बनी हिरणी की तड़प को देखता। दीदी उसे धकेल कर बहादुर बनाकर अकेली ही शादी में ले जाना चाहती है मगर उसके पैर चौखट से बाहर निकलने से इनकार कर रहे हैं।

अजीत माला के द्रवित नेत्रों की मासूमियत पर पिघल गया। 'टेस्ट' के 'रिजल्ट' को भगवान-भरोसे छोड़कर वह झट बोला—'चलिए, मैं चलता हूँ। देखिए, आपलोग देर न करेंगी क्योंकि भोर में उठकर मैं कुछ पढ़ लूँगा। आपलोगो ने तो एक 'फर्स्टक्लास क्राइसीस' खड़ा कर दिया था। चलिए-चलिए, झट उठिए।'

माला को तो भगवान मिल गया—उसकी बाछें खिल उठीं।

माताजी ने अजीत को एक कोने में ले जाकर कहा—'बेटा, क्या कहूँ, मेरे स्कूल की मंत्रिणी श्रीमती प्रधान की

बेटी की शादी है, उसमें इन्हें न भेजती तो वह बुरा मान जातीं। कुछ उपहार वगैरह भी भेजना ही पड़ेगा—उन्हीं के भरोसे हमारी रोज़ी-रोटी है। इतना आवश्यक न रहता तो तुम्हें तंग न करती। तुम्हारा कल ही टेस्ट है, मुझे खुद……'

'आप चिन्ता न करें माताजी, मैं सब सँभाल लूँगा।'

पाँच मील का लम्बा रास्ता तय करके जब अजीत का ताँगा श्रीमती प्रधान के दरवाजे पर पहुँचा तो बारात की आगवानी खत्म हो चुकी थी और लोग लौटने लगे थे।

तीनों जल्दी में हैं। लता को इस बात का फ़िक्र है कि देर से आनेवालों में उसका भी नाम न दर्ज हो जाय। वह झट माला को लिए अन्दर आँगन की ओर दौड़ी और अजीत एक आगन्तुक की तरह बाहर धीमे-धीमे टहलने लगा कि कोई जानकार सूरत नज़र आ जाय।

कि देखा, राज दूर एक कोने में बैठा अभी भी शरबत पी रहा है। उसकी जान में जान आई। उधर ही लपका। दोनों की नज़रें चार हुईं और राज ने वहीं से पुकारा—

'तो आप भी यहीं विराजमान हैं! खबर क्यों नहीं दे दी? एक साथ ही चले आते।'

'मुझे क्या पता था?'

'मतलब?'

'मैं तो लता जी के घर गया था—वहाँ माताजी ने आदेश दिया—बिटियों को शादी में ले जाओ। कल मेरा टेस्ट है मगर किसी तरह आना ही पड़ा।'

'तो आप न बराती हैं, न सराती—बस, 'स्कोर्ट' हैं!'

'यही समझो।'

एक क्षण चुप रहकर अजीत ने अपनी परीशानी ज़ाहिर करते हुए कहा—'भई, तुम ख़ूब मिले! देखो, हमें अकेले छोड़कर न चले जाना। बड़ी दूर है। यहाँ रात में ताँगा भी नहीं मिलेगा।'

'ऐलो!' तो मैं रातभर यहीं बैठा रहूँ? ना बाबा, ना—

'देखो राज, शरारत न करो। मैं अभी लता जी को ख़बर भिजवा देता हूँ कि जल्द ही छुट्टी ले लें नहीं तो फिर सवारी न मिलेगी।'

अभी बातें चल ही रही थीं कि लता एक गिलास में शरबत तथा अपनी सहेली के हाथ में नाश्ता की तश्तरी थमाए वहाँ पहुँच गई और अजीत को देते हुए कहा—'राज बाबू! आपकी मोटरगाड़ी पर हमें भी चलना है—भाग न जाइएगा, वरना....'

'हुज़ूरेआला का जो हुक्म! ख़ादिम तैयार है!'

राज हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। क़हक़हे पर क़हक़हे लगे। अगल-बग़ल के लोग उधर देखने भी लगे।

लता चली गई तो अजीत ने चुटकी ली—'तो बच्चू, एक कमांड पर 'अटेंशन' हो गए ! मेरी बात आप क्यों मानिएगा !'

'यार, मेरा मज़ाक न उड़ाओ ।'—राज ने झेंपते हुए कहा । अजीत भी हँस पड़ा ।

मध्यरात्रि के उपरान्त जब सभी राज की गाड़ी पर सवार हो घर लौट रहे थे तो लता ने कहा—'माला ! श्रीमती प्रधान ने अपनी फूल-सी बेटी का जीवन बर्बाद कर दिया ।'

'ठीक कहती हो दीदी, भला ऐसा ब्याह किया जाता है ? दुल्हा-दुल्हिन की उम्र में इतना फ़र्क ! और वह भी दूसरा विवाह—पहली बीवी से आधे दर्जन बच्चे ।'

'माँ की अक्ल पर पत्थर पड़ा था क्या ?'

'दीदी, पैसे देखकर ये लोग विवाह कर देते हैं । इनका मापदंड दूसरा नहीं होता । देखा नहीं, श्रीमती प्रधान कितनी प्रसन्न थीं ?'

'और उनकी बेटी सुधा उतनी ही उदास थी । दुल्हा देखते ही उसका चेहरा उतर गया मगर करती क्या—इतने लोग जो थे ! किसी तरह मन को बहलाए रही—कोई उसके मनोभाव को लख नहीं सका ।'

'दीदी, हमारे देश में बच्चियों की इतनी आसानी से हत्या हो जाती है कि कोई क्या कहे !—उफ़, इस शादी से तो कहीं

अच्छा था इस झमेले से भाग निकलना और अपने पैरों पर खड़ा होना। जबतक हम माँग के सिन्दूर को ललचाई दृष्टि से देखते रहेंगे—हमें मुक्ति न मिलेगी। रस्मो-रिवाज की बेड़ी में बँधी नारी तड़प रही है। दीदी, इस जंजीर को यदि काटोगी नहीं तो हमारा कल्याण न होगा। पैसा ही सब-कुछ नहीं है, और पति भी हमारा ध्रुव साध्य नहीं, एक साधन भर है।··· सुधा! हाय सुधा!!·····उसकी मासूम सूरत तो मुझे भूलती ही नहीं।···तूने इनकार क्यों नहीं कर दिया—फरार क्यों न हो गई? उफ़!'

माला भाव-विह्वल हो गई है। लता की भी मनःस्थिति अस्वस्थ है। अजीन के कानों में उसकी आवाज धनुष के कठोर टंकार सदृश गूँज रही है—गूँज रही है; और राज की गाड़ी उस वियावान रास्ते में चुपचाप पूर्व की ओर भागी चली जा रही है।

'माँ ! तुम कल रात में सोई नहीं। हमलोग जब लौटे तो देखा कि तुम दरवाजे पर कुर्सी पर बैठी ऊँघ रही हो। हमारे साथ अजीत बाबू तो गए ही थे।'— लता ने कौतूहल से पूछा।

'तुम बेटी की माँ का हाल क्या जानो ! तुम अब बड़ी हो चली। चिन्ता लगी रहती है कि तुम्हारी शादी का क्या होगा। गाँव में पैसे नहीं, कोई सहारा नहीं। जिधर जाऊँगी उधर ही पैसे की माँग होगी। दिमाग़ काम नहीं करता है। कल रात इसी चिन्ता में डूबी रही, नींद हराम हो गई। फिर सोचती भी रही—तुमलोग अकेली गई हो, साथ में सिर्फ एक अजीत ही है। रात का समय। इतनी दूर का रास्ता।'

'अभी शादी की चिन्ता क्यों करती हो माँ ! अभी एम० ए० कर लेने दो। बाद में देखा जाएगा। फिर शादी की

आवश्यकता ही क्या है ?……नौकरी करूँगी—माला भी करेगी—'

'बेटी, नौकरी तुम्हारे उम्र की औरतों के लिए नहीं है। नारी के लिए यौवन वरदान नहीं, अभिशाप है। क्या जवान और क्या बूढ़ा—सभी की आँखों पर चढ़ जाती है वह। किसी भी ऑफिस में काम करना तुम्हारे लिए दुश्वार हो जाएगा। रात-दिन अपने को बचाते ही बचाते तुम्हारी जान आफ़त में रहेगी। इसीलिए सोचती हूँ, जल्द दुल्हिन बनकर किसी घर को उजाला करो। ज्यादा पढ़ाई-लिखाई या नौकरी तुम्हारे लिए नहीं। यह तो मुझ-सी बेकस दुखिया के लिए है। तुम्हारे पिता जीवित रहते तो भला मैं इस कूचे में कभी आती ?'

माताजी की आँखें सजल हो आईं। लता भी कुछ चिंतित-सी दीख पड़ी। माँ की बातें उसे जँच गईं। जीवन का सत्य जब आँखों के सामने नाच उठता है तो मूल्यों में परिवर्त्तन हो ही जाता है। कठोर सत्य के सामने कल्पना सर टेक ही देती है।

'बेटी! मैं तो तुम्हारे लिए वर ढूँढ़ चुकी हूँ।……यदि वह राजी हो जाए तो मैं धन्य हो जाऊँ।'

'कौन माँ! कौन ?'—लता की आँखों में लज्जा तथा कौतूहल दोनों साथ-साथ खेल रहे हैं।

'अजीत।'

'सच माँ? क्या सच?'

'हाँ-हाँ।'

'क्या तुमने उससे बातें की हैं? क्या सब ठीक-ठाक कर लिया है?'—लता ने ऐसे कहा जैसे उसके मन की बात माँ बोल गई है। तब तक शर्म ने आकर उसका मुँह रोक लिया।

'नहीं! परन्तु एकबार उससे बातें करने में हर्ज क्या है? मैं तो समझती हूँ वह तैयार हो जाएगा।'

'रहो, मुझे उनसे बातें करने दो। वह बड़े नेक-मिज़ाज हैं। ज़रूर तैयार हो जाएँगे। बिल्कुल अपने जैसे हो गए हैं।'

इतनी बातें कर आज माताजी को बड़ा सन्तोष और विश्वास हुआ और बाबा विश्वनाथ को लाख-लाख मिन्नतें मानने लगीं।

लता में आत्मविश्वास की कमी नहीं। वह अपनी कक्षा की सर्वश्रेष्ठ छात्रा है और विश्वविद्यालय की सर्वोत्तम वक्ता भी। हज़ारों-हज़ार आवाज़ें तथा 'हूटिंग' का सामना कर वह माइक पर खड़ी हो जाती और फिर उसकी वाणी में ऐसी शक्ति उभर आती कि सभी उसी की ओर खिंच कर चले आते। माँ की शह पाकर वह मन-ही-मन अपनी शादी के सवाल पर अजीत से बातें कर उसका दिल टटोलने को ठान तो बैठी मगर लाख

जी कड़ा करने पर भी महीनों उससे बातें न कर सकी। जब हिम्मत बाँधती तो हिम्मत हार जाती। अजीब पशोपेश में पड़ गई है। उसे जान पड़ता कि उसकी सारी शक्ति ही छू-मन्तर हो गई है। उसका सारा दिग्विजय मानों घुटने टेक बैठा। वह लाख अपने को समझाती मगर बातें मुँह पर आ-आकर रुक जातीं। उसकी इस उड़ी-उड़ी मनोदशा को देख अजीत समझता वह अपनी स्पीच याद करते-करते कुछ भूली-भूली-सी हो जाती है।

आखिर आज उसने अजीत को छेड़ा—'अजीत बाबू, चलिए, मुझे बाजार घुमा लाइए। माँ की तबीयत ठीक नहीं, उसके लिए दवा-फल लेने हैं और कुछ कपड़े भी खरीदने हैं। माला को माँ के पास छोड़ देती हूँ।'

अजीत को आज कोई खास बझाव नहीं है। माहवारी टेस्ट से वह फुर्सत पा चुका है। झट उसके साथ जाने को तैयार हो गया।

लता ने बड़े इतमीनान से बाजार किया। जिस दूकान में जाती आराम से बैठ जाती और एक-एक आइटम पर जिरह से दूकानदारों को नाकोंदम कर देती। वे परीशान हो जाते और अजीत भी अपना सब्र खो बैठता। खरीदारी जब खत्म हुई तो

अजीत को लेकर वह एक रेस्तराँ में घुस गई और वहाँ कॉफी और चॉप का ऑर्डर दिया।

'अजीत बाबू, माफ़ कीजिएगा—आज आपको बहुत परीशान किया मैंने। अब लीजिए, एक प्याली कॉफी पीकर थकान मिटाइए।'—लता ने इतनी बातें कुछ अजीब ढंग से कहीं।

'मेरी छुट्टी का दिन है आज—शायद इसीलिए आपने इतना समय लगाया।'

'हाँ अजीत बाबू, हाँ।'

'.....................'

'कॉफी एक ही कप ली आपने। कहिए, एक कप और मँगाऊँ?'

'.....................'

'एक चॉप भी?'

'नहीं-नहीं, अब चलिए, अब सन्ध्या भी बीत चली। माताजी को दवा भी पिलानी है आपको।'

'हाँ, यह तो मैं भूल ही रही हूँ!...अच्छा, तो एक-दो-तीन...!'

कुछ ही देर में ताँगा शहर के भीड़-भाड़ से बाहर निकल आया। लता का मन स्थिर न था। आज फिर दिन रीता

ही रीता बीता। बातें नहीं ही हो सकीं। ····तो····तो···
सामने एक पार्क नज़र आया। लता ने झट कहा—'ताँगावाले !
ताँगा रोको !'

'क्यों ?'—अजीत ने आश्चर्यचकित हो पूछा।

'अजीत बाबू, सामने बड़ा सुन्दर पार्क है। शहर की भीड़-भाड़ से तबीयत ऊब गई है—चलिए, दो क्षण हरी दूब पर बैठकर मन को शान्त करें। देर तो हो ही गई, मगर चलिए न !'

वह ताँगे से उतर पड़ी। अजीत को भी उतरना ही पड़ा।

लता हरी दूब पर अधलेटी पड़ गई। अजीत वहीं बैठ गया। रात्रि की अँधियारी पार्क के चारों ओर घिर आई है। अब दो-चार जने ही इर्द-गिर्द दिखाई पड़ते हैं। अजीत ने देखा कि लता पार्क में आकर और भी अशान्त हो गई है। कुछ अजीब-सी कर रही है। कभी बैठती और कभी अधलेटी हो जाती। चेहरे पर भावों का लहरा चला आता और चला जाता।

वह पूछ बैठा—'क्यो, आपकी तबीयत तो ठीक है न ?'

वह मुस्कुरा कर टाल गई।

कुछ देर बाद अजीत ने फिर टोका—

'कहिए तो अब चला जाय !'

'बस, अब चलेंगे ही····मगर वह बात तो मैं भूल ही गई।'

'कौन-सी बात ?'

लता उठकर बैठ गई। उसका चेहरा गम्भीर हो उठा और दिल धड़कने लगा। बड़ी मुश्किल से रुक-रुक कर वह कहती गई—'अजीत बाबू, माँ अब अच्छी नहीं रहती········ उसे मेरी शादी की चिन्ता सता रही है।·······क्या राय आपकी····?' और आँखें फाड़-फाड़ कर वह उसे देखने लगी।

'जैसी आपकी राय हो !'

'सच ?' उसके चेहरे पर खुशी दौड़ गई।

'हाँ, सच, कहिए तो मैं वर ढूँढूँ—एक-से-एक···!'

अजीत ने मज़ाक किया और इधर लता का माथा चकरा गया।

'वर ढूँढूँ ?'—लता ने लड़खड़ाती ज़बान से कहा।

'हाँ-हाँ, मेरी नज़र में दो-चार अच्छे लड़के हैं। चलिए, आज ही माताजी से बातें करता हूँ। यदि उनकी राय पक्की हो तो मैं बात चला दूँ। इसकी चिन्ता आप न करें।'

लता का चेहरा स्याह हो गया। वह सपनों का संसार ही डगमगा उठा जैसे। हिम्मत बटोर कर सिमटती आवाज़ में बोली—'मगर माँ ने तो कुछ और ही कहा है।'

'क्या ?'

'आपको ही.......।'—लता के चेहरे पर शर्म की एक पतली रेखा दौड़ गई ।

अजीत झेंप गया और कुछ देर के लिए किंकर्त्तव्य-बिमूढ़-सा हो गया । वह यह सुनने को कभी तैयार न था ।

'लताजी ! मेरी शादी की अभी चर्चा कहाँ ? जब तक शिक्षा समाप्त कर कुछ कमाने न लगूँ तब तक तो...' अजीत ने धीमी आवाज़ में कहा ।

'तो माँ इन्तज़ार करने को तैयार हो जाएगी यदि आपकी ओर से उसे इतमीनान हो जाए ।'—उसके चेहरे पर आशा की एक लकीर फिर खिंच आई ।

'कल के लिए मैं आज ही कैसे कुछ वादा कर दूँ ? कल जैसा अनिश्चित है वैसा ही वादा भी अनिश्चित हो जाय तो—?'

लता समझ गई—अजीत कतरा रहा है । जितनी तड़प उसमें थी उसका एक अंश भी अजीत में नहीं । बाज़ी ज़िच हो गई । तीर निशाने से चूक गया । लता मुँह के बल गिरी । मगर दूसरे ही क्षण वह बदन झाड़कर उठ खड़ी हुई ।

'चलिए-चलिए, अजीत बाबू,.बहुत देर हो गई । नाहक ही मैंने आपको परीशान किया । माफ़ करेंगे ।'

अजीत ने देखा कि क्षण भर में लता फिर अपने पूर्वरूप में

आ गई। चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं। अजीत इस अप्रत्याशित घटना के घात-प्रतिघात से अभी स्वस्थ भी नहीं हुआ था कि लता पिछली बातों को भूल तपाक-से ताँगे में बैठ गई। ताँगा चल पड़ा।

रास्ते भर वह इधर-उधर की बातें करती रही जैसे कुछ हुआ ही न हो। मगर अजीत तो मानों अपना भान ही खो बैठा। क्या हुआ, क्या होगा—कहाँ वह है, कहाँ जा रहा है—उसे कुछ पता न रहा। यन्त्र की तरह लता की बातों का उत्तर वह किसी अनजाने बँधे क्रम से 'हाँ-हूँ' में देता चला गया।

✣

'नमस्ते अजीत बाबू ! कहिए, प्रसन्न तो हैं ?'—अजीत को देखते ही लता ने चोट की।

'हाँ, बस, वैसा ही हूँ जैसा रोज़ रहता हूँ—कोई ख़ास बात नहीं।'

'मगर, यहाँ क्यों बैठते हैं, उस कमरे में जाइए। माला वहीं सितार बजा रही है। आप तो शायद उसी से मिलने....'

'वाह, आप भी अजीब बात करती हैं !'

'अजीब नहीं, सच कहती हूँ अजीत बाबू !'—लता के चेहरे पर अब व्यंग्य की रेखा साफ़-साफ़ झलकने लगी। फिर अपने को ज़ब्त करती हुई बोली—'अच्छा, जाइए नहीं—आइए, उसी कमरे में चलें। माला आज बहुत सुन्दर गत बजा रही है।'

अजीत जब माला के कमरे में आया तो उसे सितार में तन्मय देखकर चुपचाप वहीं बैठ गया। माला भी मुस्कुराकर अपने आप में खो गई।

लता चुप है। उसे उस कमरे का वातावरण खल रहा है। बाहर भाग जाना चाहती है। अजीत गुमसुम है। लता के व्यंग्य उसकी छाती में तीर की तरह चुभ गए हैं। सितार की झंकार उसे आज छू नहीं रही है। उसका माथा चकरा रहा है। छाती में एक घुंध-सी उठ आई है। एक अकल्पनीय मनोदशा में वह उब-चुब हो रहा है। यह कैसी घटना है! जो कलतक इतनी आत्मीय थी, वही आज ऐसी असह्नीय कटु बन बैठी है! कुछ ही क्षणों में क्या-से-क्या हो गया! लता बूझकर भी इतनी अनबूझ बन सकती है, इसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी।···

लता जाने कब उठ कर चली गई। अजीत भी अपने ही में डूबा पलंग पर अधलेटे पड़ा रहा कि सितार के तार झंकृत हो थिर हो गए।

'अजीत बाबू! आपने तो मेरा सितार-वादन बन्द करा दिया।'—माला ने उदास-हताश स्वर में कहा।

'मैंने? यह कैसे?'

'हाँ-हाँ, आपने। एक बार भी दाद न दी। घोंघा-सा मुँह लिए बैठे रहे। मेरा सारा हौसला ही पस्त हो गया।'

'.....................'

'भला आज कौन-सी ऐसी आफ़त आ गई कि पल भर में

दुनिया ही बदल गई ?—आपका दिल-दिमाग़ तो कहीं······'

'नहीं-नहीं, मैं तो ठीक हूँ।'

'यही ठीक होना कहा जाता है ? न होठों पर हँसी, न चेहरे पर ख़ुशी, न आँखों में कोई मीठा इशारा। बस, बेजान पत्थर बन छत की ओर देख रहे हैं।'

'··················'

'एक बार भी तो आप झूम उठते, एक बार भी तो रीझ कर 'वाह ! वाह !' कहते। आपकी यह ख़ामोशी तो मायूसी की मार से दिल को तार-तार किए जा रही है।'

'अच्छा ! तो अब आप शायरी भी करने लगीं ?'

'ख़ैर, गले से आवाज़ तो निकली !'

'भई, कल रातभर जागता रहा—इम्तहान का भूत जो हाथ धोकर पीछे पड़ा है। इसलिए जब यहाँ आया तो ऊँघ रहा था।'

'यह तो बहलानेवाली बहानेबाज़ी भर है। ख़ैर, आपकी बात मान भी लेती हूँ।'

और माला एक लम्बी साँस लेकर चुप हो रही।

उधर लता माँ के पास जाकर अनमनी-सी बैठ गई।

माँ ने पूछा—'क्यों लता, आज बिलकुल चुपचाप हो। बात क्या है, कैसा जी है तेरा—'

'अच्छी हूँ।'

'नहीं-नहीं, तुम कबकी चुप बैठनेवाली ? कुछ-न-कुछ है तो जरूर !'

'नहीं, कुछ नहीं !'

'अच्छा, तुमने अजीत से बातें कीं ?'

'हाँ, कीं—'

माँ के चेहरे पर खुशी की रेखा दौड़ गई। वह झट कलछुल कढ़ाई में ही छोड़ बड़े कौतूहल से पूछ बैठी—'अजीत तो बड़ा भला लड़का है—जरूर तैयार हो गया होगा।'

'ना माँ, ना, एकदम इनकार कर गया !'

माँ के माथे पर बिजली गिर पड़ी। कुछ क्षणों तक उसे विश्वास ही नहीं हुआ। चेहरे पर भावों का लहरा खेलने लगा— 'धत् ! तुम झूठ बोलती हो—मुझसे सच्ची बात छिपा रही हो—शर्मा रही हो।····ना-ना, ऐसा हो नहीं सकता।····' वह फिर जोर से हँस पड़ी।

लता को माँ की इस अवस्था पर बड़ी दया आई। आखिर बेटी की माँ अपने को कितनी दयनीय अवस्था में सदा पाती है! उसके जी में आया कि उससे कह दे कि—ना माँ! ना, मैं झूठ बोलती हूँ। इस सदमे से तो उसे इस समय बचा ले।···मगर फ़ायदा क्या ? आखिर तो उसे एक दिन बात

साफ़ कहनी ही होगी। ओह…!

'तो इतनी-सी छोटी……बात में……तुम इतनी घबड़ा क्यों गई ?'

'वाह, यह छोटी बात है ? तुम क्या जानो ? माँ बनोगी तो जानोगी !' मेरा ख्याल है तुमने उसे ठीक से सम्हाला नहीं—जरूर…नाराज कर दिया।'

'नहीं तो…।'—लता कुछ खीभ-सी गई।'

'तो मैं उससे बातें करूँगी। मेरी बात वह जरूर मानेगा। मेरा बेकहा लड़का वह नहीं है।'

माँ के चेहरे पर फिर आशा की एक हलकी रेखा उभर आई।

'नहीं माँ, बेकार है।'

'तू क्यों हर बात में बहस ठान देती है ?—मैं सब ठीक कर लूँगी। वह हमारे घर का लड़का है—भोला-भाला। यों ही कह दिया होगा।'

जानकर अनजान बनने में भी एक इतमीनान आ जाता है। लता की बात से अजीत का रुख जानकर भी माताजी ने उस ओर से आँख मूँद कर एक उड़ती कल्पना का सहारा पकड़ लिया और उन्हें इससे एक आसरा मिल गया।

अगर कड़ाही पर तरकारी जलने को न आती तो शायद वह उसी कल्पनालोक में घण्टों बिता देतीं।

उधर माला ने अजीत को झकझोरते हुए कहा—'मेरा भी तो सालाना इम्तहान है। मैं भी तो रातभर जागती हूँ, मगर आपकी तरह इस क़दर कभी थकती नहीं। जब जी ऊबता है तो सितार उठा लेती हूँ। थोड़ी देर में तरोताज़ा होकर फिर पुस्तकों के पन्ने चाटने लगती हूँ।'

'भई, तुम्हारा क्या कहना! कला की छात्रा जो तुम ठहरीं। पन्ने पर पन्ने उलटते चले जाओ—कोई बात नहीं। फिर संगीत तो तुम्हारा विषय भी है। दिमाग़ तरोताज़ा करने के साथ ही साथ एक पर्चे की तैयारी भी हो गई। यहाँ तो फारमूला रटते रटते तबाही है। रात में गणित के आँकड़े खोपड़ी में कंकड़ मारते हैं और लाख हाथ फैलाने पर भी कभी पकड़ में आते नहीं।'

माला के पास इसका कोई उत्तर न था। दोनो हँस पड़े।

'अजीत बाबू! आप भागिएगा नहीं। माँ आपके लिए नाश्ता बना रही है।'—लता ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा।

'अभी-अभी यह भागने ही वाले थे। मैं सितार बजाती रही और यह मुँह लटकाए बैठे रहे। पूछने पर बताते हैं कि

इम्तहान की थकावट है। जैसे हमलोगों ने कभी इम्तहान दिया ही नहीं।'—माला ने कहा।

लता ने मुस्कुरा दिया। इस मुस्कुराहट में भी एक व्यंग्य छिपा है। अजीत को इसे ताड़ते देर न लगी। मगर उसे सन्तोष रहा कि उसमें उतनी कटुता न थी; और शायद इसीलिए वह नाश्ता करने को तैयार भी हो गया।⋯⋯उसे आश्चर्य भी कम न हुआ। माँ गर्म-गर्म पूरियाँ छानती जाती और लता ही ला-लाकर उसके थाल में डालती जाती। 'ना-ना' कहने पर भी सब्जी, चटनी-अँचार परस ही देती। अजीत के लिए तो वह कभी-कभी पूरी पहेली बन जाती। फटकारती तो बुरी तरह और दिल मिलाती तो दिल उड़ेल देती। चेहरे पर शिकन तक का नाम-निशान नहीं। उसमें गहराई ही इतनी है कि कोई यदि उसे नापने की कोशिश करे तो नापता ही चला जाय मगर मिट्टी न छू सके।

वह बीच की द्विधा को झाड़ कर फेंक देती। चित या पट—हो जो हो। शिष्टता की धुन आती तो दिल की भीतरी सतह पर लोट जाती—अशिष्टता की झक सवार होती तो माथे पर चढ़ खोपड़ी खा जाने पर तुल जाती। यही तो उसकी खसूसियत रही।

✣

'बेटा अजीत! आज मुझे बाबा विश्वनाथ के दर्शन करा लाओ। तुम्हारे साथ बाबा के दर्शन किए बहुत दिन हो गए। घर और स्कूल की झंझट तो रोज लगी ही रहती है। एक दिन भी तो इस झंझट से जान छुड़ाकर शिव की आराधना करें। काशीनगरी में लोग मोक्ष पाने के लिए आते हैं और मुझ अभागिन का ऐसा फूटा भाग कि काशी में रहकर भी बाबा विश्वनाथ के दर्शन नसीब नहीं और यों प्रतिदिन मोक्ष से दूर होती जाती हूँ।'

'हाँ, माताजी, दुनिया का झमेला तो रोज का रोज लगा ही रहता है—लगा ही रहेगा। चलिए-चलिए, अभी मैं आपको दर्शन करा लाऊँ। फिर मुझे भी फुर्सत नहीं मिलेगी। बहुत पढ़ना है।'

उस दिन मन्दिर में पूजा-पाठ की बड़ी तैयारी थी। भीड़ तो इस तरह उमड़ी चली आती थी जैसे सारी काशीनगरी

सिमट-खिसककर बाबा विश्वनाथ के चरणों में ही लोट जाएगी।

'माताजी! आपने भी दर्शन का आज कैसा दिन चुना? भीड़ के धक्के खाते-खाते हालत तबाह है।'—भीड़ में ऊब कर अजीत कहने लगा।

'तुमने भी खूब कहा बेटा! अरे, आज शिवरात्रि है—इससे बढ़कर दिन और क्या होगा! और हम दुखियों को तो बस, एक शंकर भगवान का ही आसरा है।'

'तो क्या माँगिएगा बाबा से?'

'बस, तुम्हारे लिए एक सुन्दर-सुशील बहू।'

मन्दिर से बाहर निकलकर माताजी ने दुखियों को पैसे दान में दिए, फिर ताँगे में बैठकर घर की ओर चल पड़ीं। कुछ देर चुप रहने के उपरान्त माताजी ने मौन भंग किया—'बेटा! बुरा न मानना—एक बात पूछूँ?'

'हाँ-हाँ, एक नहीं सौ बात—इसमें पूछना क्या!'

'बेटा, सच बताओ, लता ने तुम्हारा दिल कब कैसे छोटा कर दिया कि तुम उसकी ओर से खिंच गए और उससे शादी करने से इनकार कर दिया? तुम भी तो हमारे घर के लड़के ही सदृश हो। तुम्हारी-उसकी जोड़ी भगवान ने बनाकर भेजी है। और तुम्हारे हाथों में उसे सौंप कर मैं भी सुख की साँस

लूँगी। मैं विधि के हाथों बहुत सताई गई हूँ। तुम्हें मेरी हालत पर भी दया आनी चाहिए। इस बुढ़ापे में अब तुम्हीं मेरी नाव की पतवार होगे।—'

अजीत माताजी के मुँह से ऐसी बातों को सुनने को जरा भी तैयार न था। कुछ देर को सन्न हो गया। फिर अपने को सम्हालते हुए कहा—'माताजी ! आप कैसी बातें करती हैं ! मैंने लता और माला को कभी भी इस दृष्टि से न देखा। स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उनसे मेरी शादी की भी कभी चर्चा होगी। आपने भी अच्छा कहा ! इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। रह गई आपकी सेवा की बात। तो आपलोगों से जो मुझे आत्मीयता हो गई है, आपसे जो मुझे प्यार मिला है वह मेरे जीवन की अमूल्य निधि है और आपकी सेवा करने का सौभाग्य मुझे सदा मिलता रहे—यही मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात होगी। आपकी सेवा कर मैं अपने को धन्य-धन्य मानूँगा।'

माताजी चुप हो गईं। उन्हें भी उम्मीद न थी कि अजीत उन्हें ऐसा उत्तर देगा। अब वह भला आगे क्या बोलतीं ? अजीत ने फिर कहा—'माताजी आप अपनी बेटियों की शादी की इतनी चिन्ता क्यों करती हैं ? दोनों बड़ी सुसंस्कृत तथा सुशील हैं। उनकी शादी में कभी कोई दिक्कत न होगी। अभी उन्हें पढ़ने दें—एक-से-एक अच्छे लड़के मिलेंगे।'

'मगर तुम्हारे जैसा अपना तो कोई न मिलेगा।'

'वाह, मुझमें कौन ऐसे सुरखाब के पर लगे हैं? समय आने दीजिए। मैं उनके लिए वर ढूँढ़ दूँगा।'—वह हँस पड़ा। माताजी भी कुछ मुस्कुराती हुई हँसने लगीं।

'बेटा, अभी तुम्हें संसार का अनुभव नहीं। बेटी की माँ के पास यदि रुपए की तिजोरी न हो तो बेटी को आजीवन अविवाहिता ही रखना पड़ता है। और मुझ बेवा के पास यह सब कब कहाँ से आवे?'

'तो उनकी शादी करने की जरूरत ही क्या है? अब तो पुरुषों की तरह नारियों को भी बराबर का हक्क मिलता जा रहा है। शिक्षा देकर उन्हें कोई अच्छी नौकरी ही करने दें। शिक्षिता के लिए तो सभी रास्ते खुले हैं।'

'बेटा, तुम भी लता की तरह बात कर रहे हो। यौवन नारी के लिए वरदान नहीं, अभिशाप है। काशी की जाने कितनी ये कोठेवालियाँ आज़ादी की तलाश में मुँह की खाकर नाबदान में पड़ी-पड़ी सड़ रही हैं। नारी को किसी के पल्ले बाँध देना कहीं श्रेयस्कर है नहीं तो अकेला आज़ाद जीवन, नारी के लिए पग-पग पर खतरे की चुनौती है। फिर नारी का स्थान उसका पतिगृह है न कि दोतल्ले में बनी ऑफिस। उसकी

गोद का सौंदर्य उसका शिशु ही है न कि ऑफिस की फाइल। इस जहन्नुम में उन्हें आने की सलाह मत दो बेटा !'

'माताजी, ये सारी बातें अब दकियानूसी क़रार दे दी गई हैं। देश अब अंगड़ाई ले रहा है। अब पुराने मूल्य सड़े-सूखे फूल की तरह फेंक दिए जाएँगे।'

'देश लाख अँगड़ाई ले—हमारा मन, हमारी प्रवृत्तियाँ तो बदलने से रहीं। मेरे बचपन से ही दहेज-प्रथा उठाओ—सम्मेलन तथा जात-पाँत तोड़ो-मंडल की सभाएँ शहरों में हुआ करती हैं मगर ये सारी समस्याएँ जैसी कल थीं वैसी ही आज भी हैं। या यह कहो वे दिनों-दिन बिगड़ती ही जाती हैं। हमारा समाज तो अपना रंग-रवैया बदलने से रहा। सभी लड़के पढ़ने के लिए या विलायत जाने के लिए खर्चा माँगते हैं बेटी की माँ से। यह जुल्म नहीं तो क्या है !—सरासर जुल्म।'

माताजी नहला पर दहला देती चली गईं। अजीत ने चाहा इस पौर से निकल कर भागना कि पीछे से राज ने आवाज़ लगाई—'कहो किधर से आ रहे हो ?'

'खूब मिले भाई ! माताजी को दर्शन कराकर लौट रहा हूँ।'

राज साइकिल पर था। वह भी एक हाथ से ताँगा पकड़े-साथ-साथ चलने लगा। राज के आने से अजीत को राहत

मिली। फिर बात का सिलसिला बदल गया। कभी इम्तहान की चर्चा होती तो कभी बाबा विश्वनाथ के मन्दिर की भीड़ की चर्चा होती। माताजी भी उनकी बातों में दिलचस्पी लेतीं। फिर ताँगा एक लम्बा रास्ता तय कर घर पहुँचा। सीढ़ी पर ही लता ने हँसते हुए राज का स्वागत किया—'राज बाबू ! हमारे यहाँ न आने की कसम खाकर गए थे क्या आप ? इधर नज़र ही नहीं आए। माँ रोज़ पूछतीं कि राज आजकल नहीं दिखता और आप ऐसे गायब हुए जैसे गधे के सिर से सींग !' और फिर वही उन्मुक्त हँसी।

'लताजी ! आप भी कमाल करती हैं। आजकल इम्तहान के दिनों में किसी छात्र से भेंट हो जाना मुश्किल ही जानिए। दो साल तो छूटकर चकल्लस में कटे, अब आटे-दाल का भाव मालूम हो रहा है।'

बातें करते-करते वे अन्दरवाले कमरे में चले गए। अजीत भी उन्हीं के साथ वहीं बैठ गया मगर लता उसकी ओर ज़रा भी मुखातिब नहीं हुई। अजीत कुछ अजीब घुटन अनुभव करने लगा मगर लता शायद जानकर उसकी अवहेलना करने को तैयार आई थी।

'मगर आप जैसे मस्त जीव पर भी इम्तहान का जादू चढ़ सकता है—यह तो शायद नवाँ आश्चर्य है !'

'वाह, यह भी अच्छी रही ! अजी साहब, मैं अब फेल करना नहीं चाहता । लोग-बाग कितनी फब्तियाँ कसते हैं !'

'.................'

'अच्छा, आपकी कलाकार कहाँ है ? कहीं दिखती नहीं ।'

'उसपर भी आप ही जैसा भूत सवार है । बस, मैं ही बरी हूँ ।'

'ओ ! तो माला अभी 'स्टडी' में है । मेम साहिबा को हमलोगों से बातचीत करने को भी फुर्सत नहीं ! ठहरो, अभी मैं उसे पकड़ लाता हूँ ।'

माला ने लाख हीला लगाया पर राज के आगे उसकी एक न चली । आखिर हार मान वह उस मजलिस में पहुँच ही गई और फिर घण्टों हँसी-ठहाके और गुलछर्रे उड़ते रहे । राज ने अपनी ज़िन्दादिली का सिक्का जमा दिया ।

अजीत के सर पर इम्तहान का भूत सवार है मगर ये घटनाएँ उसे चैन नहीं लेने देतीं। वह जितनी ही शान्ति की खोज करता उतना ही अशान्त होता जाता। किताब के पन्नों पर लता का व्यंग्य-भरा चेहरा उभर आता—नोट की कॉपियों पर माताजी की बेबस सूरत नाच जाती। वह चला था कॉलेज की डिग्री लेने और यहाँ लेने के देने पड़ रहे हैं। जिस घर में वह राहत पाने जाता वही आज उसे खाए जा रहा है। ज़िन्दगी जहाँ मौज की तफ़रीह बनती वहीं एक-एक साँस जैसे झुलसाए जा रही है। आज उसे पढ़ने में ज़रा भी जी नहीं लगता। पन्ने पर पन्ने उलटता जाता मगर न आँख जमती न मन रमता।

आखिर ऊबकर किताबों को फेंक होस्टल से बाहर निकल गया। सोचा—सन्ध्या के इस शान्त वातावरण में कहीं दूर तक जाकर टहल आएँ। सर हल्का हो जाएगा। निर्जन-सुनसान

रास्ता—कभी-कभी ताँगे और साइकिल अगल-बगल से निकल जाते। कभी सर पर टोकरी या कन्धे पर कुदाल लिए मजदूरों की टोलियाँ घर की ओर भागती मिल जातीं।······

कि वही चिर-परिचित आवाज़ उसे फिर सुनाई पड़ गई और वह चौंक उठा—'ऐं', माला कहाँ से !'········हठात् एक ताँगा आकर पास में रुक गया। उसके साथ दो और सहेलियाँ बैठी हैं।

'अजीत बाबू ! इधर क्या चक्कर लगा रहे हैं इस सुनसान में—?'

'और तुम इधर कहाँ से भटकी चली आई ?'

'बस, आपको खोजती हुई !'—माला ने ज़ोर से हँसते हुए कहा।

'खैर, खोज तो लिया तुमने। अब बताओ ऑर्डर क्या है ?' फिर दोनों सहेलियों को देखकर ज़रा झेंप-सा गया।

'ऑर्डर यही है कि आप आगे ताँगे में बैठ जाइए। नहीं तो कमला और रज़िया को मुझको घर तक पहुँचाने नाहक ही जाना होगा। मैं रज़िया के घर एक पर्चे के लिए कुछ ज़रूरी किताबें लाने गई थी। बड़ी देर हो गई। हमलोग 'ज्वायंट स्टडी' करने लगीं। अब ये मुझे घर छोड़ने जा रही हैं। अरे········चलिए-चलिए, देर क्यों करते हैं ? आगे एक ताँगा

मिलते ही इन्हें लौटा दूँगा और आप मुझे घर छोड़ आइएगा।'

तीनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं। अजीत बुरा फँसा। आज फिर लता का एक तीर छाती में चुभाकर लौटना पड़ेगा।

'सकपकाते क्यों हैं अजीत बाबू! आइए-आइए, बैठिये। मेरा इतना छोटा इसरार भी आप ठुकरा देंगे?'

'नहीं-नहीं, चलो, ऐसी भी क्या बात है!'

वह आगे बैठ गया। ताँगा जैसे हवा में उड़ चला। कुछ देर बाद एक नुक्कड़ मिला जहाँ दो-चार ताँगे खड़े थे। ताँगे को देखकर अजीत ने कहा—'माला, यहीं उतरकर दूसरा ताँगा कर लो। अपनी सहेलियों को लौट जाने दो वरना इन्हें बड़ी देर हो जाएगी।'

कमला और रज़िया अपने ताँगे में लौट गईं। माला और अजीत दूसरे ताँगे में घर की ओर बढ़।

अजीत फिर चुप है। गुमसुम, उबचुब। माला उसे छेड़ती परन्तु वह कतरा जाता। मगर इस बार उसने झकझोर दिया—'अजीत बाबू! यह परिवर्त्तन क्यों? इधर आप इतने चुपचाप गुमसुम क्यों रहते हैं? जरूर कोई बात हुई है। यह इम्तहान का जलवा तो नहीं दिखता।'

'नहीं, कुछ नहीं।'

'नहीं, जरूर कुछ।'

वह हँसने लगी तो अजीत भी उबल पड़ा—'माला ! एक अनहोनी घटना घट गई है।'

'आखिर क्या ?'

'उस दिन लता ने मुझसे एक बड़ा बेतुका सवाल पूछ डाला—क्यों; मुझसे शादी करोगे ? कर लो—कर लो न !' मैं पशोपेश में पड़ गया। अजीब उलझन......।'

'तो इसमें पशोपेश में पड़ने की क्या बात थी ? 'हाँ' या 'ना' कह देते।'

'वाह ! तुम भी खूब निकली ! मैंने 'ना' ही कहा।'

'फिर.......'

'फिर माताजी ने मुझे घेरा तो मुझे लाचार कहना पड़ा—जिसे मैं बराबर बहन मानता आया हूँ उससे भला यह सम्बन्ध !'

'बिल्कुल ठीक उत्तर दिया आपने। मगर मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि आप इतनी-सी छोटी बात के लिए इतने परीशान क्यों हो रहे हैं ? बात यों आई और यों गई, बस।'—उसने चुटकी बजाते हुए कहा।

'.....................'

'बात यह है कि मेरी माँ दुख की मारी एक विधवा है। कहीं कोई सहारा नहीं। इस परिस्थिति में दीदी से कुछ कहना

ही दिया या आपसे उन्होंने ही कुछ कहा तो इसके लिए इतना बवाल क्यों? जो बात जहाँ उठी, वहीं दब गई। फिर छोड़िए भी अब उन बातों को।'

माला से यह आपबीती कहकर अजीत को आज बड़ी शान्ति मिली। इन सारी उलझनों को उसने पहले ही उसके सामने रख दिया होता तो इतनी परीशानी न होती। हाँ, अब वह इस हैरत में है कि इतनी बड़ी बात को माला इतनी छोटी मानकर कैसे टाल गई! आखिर उसने लता के प्रस्ताव को एक मज़ाक ही समझा। अजीब हाल है। उसके चेहरे पर कोई शिकन—कोई थिरकन नहीं। जैसे कुछ हुआ ही न हो। मगर माला नहीं समझती—लता इन बातों को इतना हल्का नहीं समझती, वह इसे गम्भीर समझती है। माला अभी भी बालिका ही है। दूध-पीती बच्ची। माताजी भी इसे मज़ाक नहीं समझतीं। वह भी काफी गम्भीर थीं।

'क्यों,—अभी भी माथे का धुंध साफ़ न हुआ? बड़े सिड़ी हैं आप!'—माला ने अनायास ही कह दिया।

'मैं तो समझ ही नहीं पाता कि तुम सिड़ी हो या मैं!'—अजीत के मुख से भी निकल ही गया।

'अच्छा, यह भी अच्छी ही रही! खैर, दोनों सिड़ी! बाज़ी बराबर की तो रही! अब कहिए, पढ़ाई कैसी चल रही है?'

'जब से यह तमाशा उठा— तब से बिल्कुल नहीं।'

'आप भी धन्य हैं। तिल का ताड़ बना दिया। युनिवर्सिटी का यह आपका आखिरी साल है। इस बार अगर आपको पहला दर्जा न आया तो आपकी जिन्दगी खराब हो जाएगी—इसलिए एकाग्र-चित्त हो पढ़ें।'

'बड़ी सीख देनेवाली बन गई हो!'

'तो छोड़िए, खूब खेलिए-खूब खेलिए—अब खुश? नहीं-नहीं, खूब सर टकराइए, खूब माथापच्ची कीजिए—खूब-खूब-खूब।'

बातों के सिलसिले में पता ही न चला कि माला का घर आ गया है और ताँगा रुकने ही वाला है। अजीत धड़फड़ाकर उठा और बोला—'माला, तुम जाओ। मैं अब यहीं से लौटता हूँ। बहुत पढ़ना है। ऊपर जाऊँगा तो माताजी जल्द छोड़ेंगी नहीं। कहेंगी कि खाना खाकर जाओ।'

'जैसी आपकी मर्जी—।'

अजीत कतराकर निकल गया मगर चलते-चलते भी शायद उसने सच्ची बात माला से नहीं बताई कि वह क्यों भाग रहा है।

'आज इतनी उदास क्यों हो माँ ?'

दिनभर स्कूल की नौकरी, फिर घर में ऐसी उदासी—आखिर इसका असर तन्दुरुस्ती पर कितना बुरा पड़ेगा ? न जाने कौन चिन्ता यों घेरे रहती है तुम्हें ?'—लता ने वेदना-भरी आत्मीयता से कहा ।

'...................'

'चिन्ता चितासमान है माँ ! इसे झाड़ फेंको ।'

'मेरी चिन्ता तो तू है बेटी ! तू एक किनारे लग जाती...'

'फिर वही पुराना किस्सा ! इसकी चिन्ता अब तुम छोड़ो । मैं पढ़-लिखकर नौकरी करूँगी । दहेज देने को पैसे नहीं तो इस तरह हाथ पसार कर भीख माँगने को मैं न कहूँगी । बड़ी जलालत है इसमें ।'

'ना, मैं अजीत पर बड़ा भरोसा किए बैठी थी, मगर वह सपना टूट गया । उस दिन भी उसने वही बात दुहराई । जी

मसोस कर रह गई। करती क्या ? ऐसी उम्मीद मुझे न थी।'

'उसका नाम न लो माँ! बड़ा पतित है वह। उसे तो यहाँ आने न देना चाहिए।'—लता की आँखें लाल हो गईं। खीस से दाँत पीस कर बोली।

'नहीं बेटी! ऐसा नहीं कहते। उसने फिर भी हमारा उपकार किया है।...'

'उपकार न खाक किया है। कभी कुछ किया भी हो तो आज वह अत्याचार करने पर तुला है। जानती हो वह मुझसे क्यों कतरा गया? वह माला से शादी करना चाहता है।'

'धत्, ऐसी बात दिमाग़ में न ला...।'

'तुम भी क्या बात करती हो माँ! तुम आदमी नहीं पहचानती। वह छँटा हुआ......।'

'मगर मेरी माला तो उसके सामने बच्ची है—उसका मेल उसके साथ........।'

'और तुम यह बच्ची से भी बच्ची की तरह बात करती हो'....

कि राज हँसता हुआ पहुँच गया।

'वाह, माँ-बेटी में बड़ी सीरियस गुफ्तगू हो रही है। क्या मैं भी आ सकता हूँ?'

'आ बेटा, आ······नहीं, कुछ खास बात नहीं···। मगर आज बहुत दिनों बाद···।'

'क्या कहूँ, इम्तहान का पंजा जो गला छोड़े ! बस, अभी-अभी उससे निबट पाया हूँ और वहाँ से छूटते ही यहीं आया। देखिए, अभी हाथ की रोशनाई भी नहीं मिटी है।'—कहकर हँसने लगा।

'तो आइए, माँ के बनाए हुए पनतुए चखिए—बड़ा शेर मारकर आए हैं आप।'

'पहले 'लीडर' में नाम निकल आए तो समझना कि शेर मारा गया।'

'आइए-आइए, वह तो मरा ही समझिए।'—कहती लता राज को अपने कमरे में ले गई और बड़े स्नेह से बिठाकर गप्पें लड़ाने लगी।

'एक पनतुआ और······'

'नहीं-नहीं, मुँह मीठा से भर गया है। अलबत्ता कुछ नमकीन चखाइए। अब बस······।'

'तो लीजिए एकाध समोसे, अभी नीचे की दूकान से गरम-गरम····'

'लाइए। एक वह भी सही।···और हाँ, माला कहाँ है ?'

'वह भी आती ही होगी—आज उसका भी इम्तहान खत्म हो रहा है—'

'ऐलो ! उधर अजीत का भी आज ही खत्म हो रहा है। तीनों एक ही दिन आजादी पा गए ! यह भी अच्छी रही। चलो, कल से मस्ती कटेगी। कहिए लता देवी ? क्या ख्याल है आपका ?'

'बस, जो ख्याल आपका है।'—उसके होठ शोखी में टेढ़े होकर खिल पड़े। राज को उसकी इस मुद्रा पर बड़ा आनन्द आया।

'कभी गंगा की गोद में फिरफिरी और कभी चित्रा सिनेमा में दृष्टिभोग ; कभी मटरगस्ती और कभी रेस्तराँ में बालाई की लस्सी से गला तर किया जाएगा। कहिए, कैसा प्रोग्राम है ?'

'यह भी कहना ही रहा ?'

'और हाँ, अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी तथा संगीत-सम्मेलन भी अगले माह में होनेवाला है। उसमें भी चलेंगे। बड़ा मज़ा आएगा।—'

दोनों ज़ोर से हँस पड़े।

'लता ! अजीत को भी कुछ दिनों के लिए रोकना

चाहिए नहीं तो वह कल ही से घर जाने को कमर कस लेगा।' बड़ा बुद्धू है।'

'किस मरदूद का नाम ले लिया आपने? वह भी कोई आदमी है? उसकी खोपड़ी का तो कोई अन्दाज़ ही नहीं मिलता। अजीब खब्त है।'

'मुझे तो कभी ऐसी बात नहीं दिखी। हाँ, वह बुद्धू ज़रूर है।'

लता कुछ क्षणों के लिए सोचने लगी। फिर दीवार पर टँगे हुए चित्र पर आँखें गड़ाते हुए कहा—'बुद्धू मैं तो नहीं मानती—हाँ, चालाक वह ज़रूर है।'

लता की बातों से राज को आश्चर्य तथा मनोरंजन दोनों हुआ। वह उसे समझ नहीं पाया।

कुछ देर बाद अजीत और माला एक ही साथ पहुँचे। अजीत अपना इम्तहान देकर सीधे माला को लेने चला गया और वहाँ से दोनों जने साथ ही घर आए। राज दोनों से बड़े प्रेम से मिला। माताजी ने दोनों को खूब नाश्ता भी कराया। मगर लता बराबर कतराती रही। नाक-भौं सिकोड़ती रही। खुशगप्पियाँ बहुत देर तक चलती रहीं, राज ने सभी को हँसा कर बाग़-बाग़ कर दिया किन्तु लता ने अजीत की ओर आँखें उठाकर देखा तक नहीं और न कोई बात की।

माला को लेने उसकी सहेलियाँ चली आईं। सबका इम्तहान आज ही खत्म हुआ है और आज ही सबके कहीं जाने का प्रोग्राम बन कर तैयार है। राज भी गपशप्पियाँ लड़ाकर घर जाने को तैयार हुआ तो लता ने अजीत को टोका—'राज बाबू तो बहुत देर से बैठे हैं—आपको क्या जल्दी है ?'

'वाह, आप भी खूब कहती हैं! माँ का फ़रमान पहुँचा है। घर से बुलाने को दो तार आ चुके। उसी की तैयारी—'

'मैं आपका ज्यादा समय न लूँगी। कुछ देर और—।'

अजीत बेमन का बैठ गया। कलेजा तो धक् कर गया। अब जान छूटने को नहीं; फिर कोई सवाल-जवाब होगा।

राज को सीढ़ियों तक पहुँचाकर जब लता लौटी तो बड़ी गम्भीर दिखी। उसकी सूरत को देखकर अजीत फिर सहम गया। उसे जान पड़ा कि उसकी हिम्मत टूट रही है।

'कहिए अजीत बाबू! आज्ञा हो तो एक बात पूछूँ।'

'अवश्य पूछिए साहब, एक नहीं—अनेक।'—अजीत ने अपने को संयत करते हुए कहा।

'माला और मेरी शादी की बात लेकर माँ इधर बेतरह चिन्तित रहती हैं। यदि आप कहें तो आपकी शादी माला से कर दी जाय। माँ को कोई एतराज न होगा। और शायद

आपकी भी नजर उसी पर है। इसीलिए शायद माँ के पहले आग्रह को आपने अनसुना कर दिया।'

लता इन सारी बातों को ऐसी आसानी से कह गई जैसे इन बातों में कोई गरिमा, कोई भावना तनिक भी न हो और उसका दिल एक निर्लिप्त परमहंस का अनासक्त दिल हो।

अजीत तो कभी लता को देखता, कभी पलट कर अपने-आपको देखता और कभी असहाय-सा आकाश को देखता। हृदय की गति बहुत तेज हो गई और उसे लगा जैसे उसकी सारी शक्ति क्षीण होती चली जा रही है। लता के सामने—एक नारी के सम्मुख—वह इस अवस्था पर पहुँच जाय—यह कैसी कल्पना, कैसी विडम्बना! चट अपनी बची हुई तमाम शक्ति को केन्द्रीभूत कर उसने झट कहा—'लताजी! कहाँ की बात कहाँ ला रही हैं आप? माला के प्रति मेरे मन में कभी कोई ऐसी भावना नहीं आई। जिस स्नेह-दृष्टि से मैंने आज तक आपको देखा उसी भावना से माला को भी। फिर उससे विवाह करने की बात ही कहाँ उठती है?'—अजीत एक सुर में बोल गया। हाँ, डर भी रहा है कहीं कुछ गलत न बोल जाय।

लता ऐसा उत्तर सुनने को तैयार न थी। वह सन्न हो गई। उसने सोचा कुछ और था और हुआ कुछ और ही।
····यह अजीत भी एक पहेली है—पहेली। इसकी गहराई

नापना उसके मान का नहीं। जिस धरती पर वह खड़ी होना चाहती थी, वही पाँव तले से सरक गई।

दोनों चुप बैठे रहे। लता को हिम्मत न थी अजीत की ओर देखने की और अजीत सोच रहा था कि इस समय कोई उसे ऊपर से खींच लेता तो उसे राहत मिलती।

लता एक पत्रिका के पन्ने अनदेखे उलटती रही। अजीत शून्य की ओर एकटक निहारता रहा। आखिर बिना कहे-सुने धीरे-से उठकर चलता हुआ।

यह सारी घटना कुछ ही मिन्टों में समाप्त हो गई। एक सीन-सी, जैसे आई वैसे ही चली गई।

✣

अजीत जब माला के घर से चला तो उसकी मानसिक स्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि उसे कुछ ठीक-ठीक सूझ न रहा था। बस, सीढ़ियों से उतरते ही निरुद्देश्य यों ही पैदल चल पड़ा। हाँ, उसकी चाल में इतनी तेजी थी जैसे ट्रेन पकड़ने को लपका जा रहा हो। इसी उजलत में कभी खोंचेवाले तो कभी फुटपाथ पर भागते हुए अन्य व्यक्तियों से अक्सर टकरा जाता। सभी उसकी ओर देखने लगते—पागल तो नहीं है! बहुत दूर निकल गया—यों ही सोचते-सोचते, उलझते-उलझते।

लता को उसने सही उत्तर दिया या गलत, इसका समाधान वह नहीं कर पा रहा था। यही भावना उसे बेचैन किए हुए थी। काश, लता की बात टालकर माला से पूछ तो लिया होता! वह अब बालिका नहीं है। वह भी सभी बातों में अपना दखल चाहती है। परन्तु अब तो तीर तरकस से

निकल चुका, मुँह से निकली हुई बात तो अब लौट नहीं सकती। उफ़, क्या से क्या हो गया! हे भगवन्! अपने को निर्दोष घोषित करने की धुन में कहीं कोई महान् दोष तो न कर गया-वह! पुण्यात्मा बनने के फेर में उसका दामन पाप से तो न रंग गया!! उसके हृदय में एक आग—एक शिखा जल रही है। घंटों इधर-उधर चक्कर लगाता होस्टल लौट आया और अपने-आप में खोया-खोया जाने कब सो गया।

'उठिए, उठिए अजीत बाबू, आख़िर कितना सोइएगा? देखिए, कितना दिन चढ़ आया!'—माला ने उसकी चादर खींचकर उसे जगा दिया।

'अरे, तुम! और यहाँ!!'

'तो यहाँ आना क्या कोई गुनाह है?'

'तुम भी ख़ूब मज़ाक करती हो। देखती नहीं, यह लड़कों का होस्टल है? भला लोग-बाग क्या सोचेंगे? आज दिनभर लड़के मज़ाक करते-करते मेरा यहाँ रहना मुश्किल कर देंगे।'

'उनकी बला से! और यहाँ रहना ही कहाँ है! अब आप लौटकर यहाँ आते तो नहीं?'

'बड़ी ढीठ हो गई हो।'

'जल्द तैयार हो जाइए। कहीं घूम आया जाय। इम्तहान देकर मुक्त हो गई हूँ। बड़ा हल्का अनुभव कर रही हूँ।'

'कोई बात नहीं। तो हवा में सेमल की रूई की तरह सदा उड़ती रहिए। मालूम होता है, 'लाइट' अनुभव करते-करते ही आप यहाँ भी उड़ती चली आई हैं।'

'हाँ, कुछ ऐसा ही है।'

'तो बिराजिए—मैं अभी नीचे से तैयार होकर आता हूँ।'

मंजन-ब्रश लिए अजीत नीचे चला गया। माला कमरे में अकेली रह गई। कभी अखबार के पन्ने उलटती और कभी इम्तहान में इकट्ठी की हुई किताबों का अम्बार देखकर तिलमिला जाती। इसी सिलसिले में उसकी निगाह एक डायरी पर पड़ गई। चट उठा लिया। देखा—खासी अच्छी बिल्कुल नई डायरी है। अन्दर देखा। कल की तारीखवाले पृष्ठ पर कुछ गोटा हुआ है —बड़े महीन अक्षरों में, अंधाधुंध। उसकी कौतूहलपूर्ण आँखे उसपर जम गईं—

···'अजीब परीशानी है। लता ने आज बड़ा बेतुका सवाल पूछा·· ····मैं भी क्या उत्तर देता··· जो सूझ गया, दे दिया। ········मैंने कभी भी ऐसे सवाल की प्रतीक्षा ही न की थी और न कभी कल्पना ही की थी कि ऐसा उत्तर मैं दूँगा·······ऐसा उत्तर·······हाँ-हाँ,—ऐसा उत्तर।······तो इसका उत्तरदायित्व किसपर है? ···मुझपर—सोलहो आने मुझपर···फिर माला क्या सोचेगी? कितना ग़लत उत्तर मैंने दे दिया? यह क्या

ज़लज़ला आ गया. एकबारगी कि जिस मीनार पर खड़ा था वही ज़मींदोज़ हो गई! अब तो हड्डी-पसली का भी क्या पता!······यह भी अच्छा ही रहा अजीत बाबू, यह महल अपने ही हाथों बनाया और अपने ही हाथों गिरा दिया! न बनाते देर, न मिटाते देर। तुम्हारी तक़दीर ही ऐसी है मियाँ''······सन्ध्या और आधी रात इसी उधेड़बुन में कट गई कि माला से क्या कहूँगा, कैसे मुँह दिखाऊँगा! वह भी मुझे क्या समझ बैठेगी! भाई ठीक कहते हैं—तुम बड़े 'नरवस' लड़के हो—जल्द घबड़ा उठते हो और इसीलिए सब जानते हुए भी परीक्षा में अच्छे नम्बर नहीं ला पाते हो। परिस्थिति का मुकाबला करो—उसके सामने ढेर न हो जाओ। तुम्हारे तो पैर डगमगाने लगते हैं। ललाट पर पसीने की बूँदें उग आती हैं।···उफ़!······तो सो जाऊँ अब! कल सारी बातें माला से कहूँगा।··· परन्तु माला······। वह भी तो अभी बच्ची है—बातें समझती नहीं—बस, हँसती रहती है। उलझी हुई बातें उसे सुलझी हुई लगती हैं और सुलझी हुई उलझी। धत्! चलो, सो रहो। शायद सपनों में कोई समाधान मिल जाय—'

यहीं उस दिन की डायरी एक लकीर में विलीन हो गई है! माला को यह पढ़कर बड़ा मनोरंजन हुआ और उसने ज़ोरों का

ठहाका लगाया। अजीत ने चौंक कर कमरे में प्रवेश किया और पूछा—'ऐं! अकेली-अकेली पागल की तरह यह क्या हँस रही हो? आखिर क्या मसाला मिल गया है तुम्हें—!'

'वही मसाला जो आप मुझे कभी चखाते नहीं! जी, तो आप डायरी भी लिखते हैं?—ह-ह-ह-ह...!'

अजीत को काटो तो खून नहीं। चोर सेंध पर पकड़ा गया। होठों पर ताला लग गया और आलमारी में रखे हुए आइने की तरफ़ मुँह करके बाल झाड़ने लगा तो झाड़ता ही रहा तबतक—जबतक माला ने आइना उठाकर पलंग पर फेंक न दिया।

'क्या तमाशा करती हो! अभी दाढ़ी बनानी थी।'

'भला, अन्धेरे में दाढ़ी बनती है? आइए, इधर रोशनी में—ज़रा मुँह तो देखूँ!' और फिर वही ठहाका—ह ह-ह-ह।

'क्या लड़कपन करती हो? अगल-बगल के जूनियर लड़के भला क्या समझते होंगे? चलो, चलो यहाँ से, तुम मुझे बेइज्जत करके धर दोगी।'

वह सोचता है—आफ़त की मारी डायरी इसे आज कहाँ से मिल गई जो आफ़त की पुड़िया बन गई! धत्! आज ही लिखना शुरू किया और आज ही पोल खुल गई!

अजीत माला को लिए सीढ़ियों से झट उतरकर ताँगा-स्टैंड की ओर बढ़ चला। इर्द-गिर्द खड़े लड़के दोनों को आँखें फाड़कर देख रहे हैं। कुछ दूर ताँगे पर जाने के बाद एक रेस्तराँ मिला। दोनों वहीं उतर गए।

'आओ, कॉफी पी जाय—कुछ नाश्ता भी····' अजीत ने रेस्तराँ की ओर जाते हुए कहा।

कॉफी आई। दोनों पीने लगे। फिर अजीत सारी झिझक छोड़कर माला से पूछ बैठता है—'तुमने डायरी तो पढ़ ली। अब बताओ, मैंने ठीक कहा या ग़लत ?'

'बिलकुल ठीक—सोलहो आने ठीक !'—फिर वही चिर-परिचित हँसी।

अजीत सर्द हो गया। हाथ की प्याली गिरते-गिरते बची। कोशिश करके भी एक प्याली से ज्यादा कॉफी न पी सका। मगर माला वैसी ही रही जैसे पहले थी—हँसती-हँसाती। सौंफ मुँह में रखकर दोनों ताँगे पर सवार हो बाज़ार की ओर चल पड़े। अजीत की मुद्रा गम्भीर—माला की व्यंग्य-भरी।

'आप इतनी छोटी बातों पर इस तरह परीशान क्यों हो जाते हैं ? दीदी और माँ का तो माथा ख़राब हो गया है जो अनाप-सनाप सवाल आपसे पूछती रहती हैं—फिर आप अपना माथा क्यों ख़राब करते हैं ? उनकी बातें एक कान से सुनिए,

दूसरे कान से निकाल दीजिए। इन सड़ी-गली बातों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। दीदी इतनी सुसंस्कृत होकर ऐसी बेतुकी बातें क्यों किया करती है—मुझे समझ में नहीं आता। आज उससे जरूर पूछूँगी।'

'नहीं-नहीं, तिल का ताड़ न बनाओ। मैंने बात जहाँ उठी, वहीं उसकी जड़ ही काट दी। अब आगे………।'—वह फिर तिलमिला उठा। आखिर उसने क्या कर दिया!

'तो फिर परीशान क्यों हैं? चुपचाप मौज से रहिए'—माला ने दोनों भौं को सटाते हुए कहा।

अजीत चुप हो गया। हाँ, उसकी जबान तो सम्हल गई मगर उसका दिल न सम्हला। समस्या सुलझाते-सुलझाते चारों ओर के कठोर काँटों में वह और भी उलझता गया, उलझता गया—उलझ गया।

ताँगा जब बाजार में पहुँचा तो माला ने उसे रुकवाते हुए कहा—'चलिए, दो-चार चीजें खरीद लूँ। माँ ने माँगी हैं। और हाँ, दास कम्पनी से मेरे लिए एक मिजराब भी खरीद दें। बेला जो उस दिन मेरी मिजराब ले गई, आजतक लौटाने का नाम न लिया। आप तो छुट्टियों में दस बहाने बनाकर घर भाग जाएँगे, फिर मेरा तो एकमात्र सहारा सितार ही रह जाएगा।'

अजीत बाज़ार में माला के पीछे-पीछे छाया की तरह घूम रहा है मगर मन कहीं और ही रमा है। रह-रहकर सोचने लगता—यह माला भी जाने कैसी माला है! इसके फूलों को नई सजावट से गूँथकर जब भी मैं गले का हार बनाना चाहता हूँ, वे एकाएक बिखर जाते हैं!

कि किसी ने चट कहा—बिखरानेवाले तो तुम हो--तुम! ···सच?···हाँ-हाँ, एक नहीं, हज़ार बार सच!

✤

२

माला के हाथों में दो निमन्त्रण-पत्र खेल रहे हैं। वह कभी एक को खोलती; मुस्कुराती-हँसती, उसे पढ़ती, फिर रख देती। फिर दूसरे को लेती; उसे भी पढ़ती—बार-बार पढ़ती—पढ़ते-पढ़ते गम्भीर हो जाती—सोचते-सोचते अन्यमनस्क-सी हो जाती। एक के कवर पर एक पुरुष तथा एक नारी की कोमल हथेलियों के मधुर मिलन का रंगीन चित्र है तो दूसरे के मुखपृष्ठ पर डोली पर बैठी नववधू की विदाई की छवि है। दुल्हा आगे-आगे चल रहा है और पीछे-पीछे शहनाईवाले सुर सम्हालते धीरे-धीरे चल रहे हैं। बहू शायद पालकी से झाँकती भी है—अपनी सहेलियों से मौन विदा ले रही है। पालकी पर उसकी आँखें कुछ क्षण को टिक जाती हैं—बहू के रूप में वह अपनी छवि देखने लगती है और दुल्हे के रूप में·······। आँखें भर आतीं—कभी-कभी फफक-फफक कर रो पड़ती जब उस निमन्त्रण-पत्र में अन्दर छपे सुन्दर-

सुनहले अक्षरों को पढ़ती—'अजीत और किरण के पावन-परिणय के शुभ अवसर पर—।'

क्या यह सच है?···हाँ-हाँ, सच है—सच ! कठोर सत्य। उफ़ !······वह निमन्त्रण-पत्र हाथ से छूटकर जमीन पर गिर जाता। फिर दूसरा निमन्त्रण-पत्र हाथ में आता। उसे खोलकर पढ़ती—ठहाका मारकर हँस देती। कोई दूसरा देखता तो पागल समझता······ह-ह-ह-ह—यह कौन? राज बाबू? —नहीं-नहीं,—'श्री राजनारायण तथा सौभाग्यवती लता के शुभ विवाह के पुनीत अवसर पर······।' ···ह-ह-ह···कहो जीजी! आखिर तू भी कहाँ जाकर गिरी! नरक में भी ठेलाठेली! क्या सपना देखा था और क्या पाया!

'कहीं पे निगाहें—कहीं पे निशाना,
काफ़िर अदा की अदा है मस्ताना।'

ह-ह-ह। बड़ी घाघ निकली! चुपके-से शादी तय कर महल में बैठने की तैयारी कर ली। चलो, अच्छा ही रहा। जिस राजसी जीवन से तुम भागती थी वही तुम्हारे गले लगा। महल में बैठकर गहनों के बोझ से दब जाना, बाँदियों का हुजूम तुम्हें सदा घेरे रहेगा और नित नए-नए पकवान खाने को मिलेंगे; मगर ज़िन्दगी के उस स्रोत से, जो नित नए-नए फूल उगाता है—नई-नई प्रेरणा देता है, जो जीवन का रस है, उस

रस से तुम वंचित हो जाओगी। जिन्दगी का वह रहस्यमय स्पन्दन—वह पुलकमय प्लावन!

और अजीत बाबू! आप भी खूब निकले! कोई सूचना नहीं, कोई खबर नहीं—बस, एक दिन निमन्त्रण-पत्र ही आ गया! ह-ह-ह—! काश हमें भी अपनी बहू को दिखाया होता—फोटो ही सही। मैं आपकी शादी काट तो न देती—फिर यह पर्दा क्यों? यह दुराव क्यों? मैं भी आपका भला चाहती हूँ—आपके सुख की चिन्ता मुझे भी है—फिर भी मुझे आपने अपना विश्वासभाजन न बनाया—ऐसी कौन-सी भूल हो गई मुझसे···क्या मैं इतनी भी······

उसकी आँखें भर आईं। दो-चार बूँद आँसू गालों पर लुढ़क गए। साड़ी के आँचल से उसने उन्हें पोंछ दिया।

कि माताजी ने पुकारा—'माला! ओ माला! कहाँ चली गई? क्या अपनी शादी का सारा सामान लता ही करेगी? तू हाथ न बँटाएगी? सुबह से ही घर में जो घुसी तो अबतक बाहर न आई। अदौरी-तिलौरी बनानी है—अँचार भी लगाने हैं। जाने किधर चली जाती है!'—एक सुर में वह इतनी सारी बातें कह गई।

'आई माँ! आई—अभी आई।' उसने वहीं से पुकारा और दौड़ती हुई आँगन में चली आई।

माला भी शादी की तैयारी में लग गई है। बारात का सारा सामान तो राज के परिवारवाले करेंगे। माताजी को तो केवल कच्ची-पक्की किसी तरह खिला देना है।

'माला ! हमारी इतनी औकात कहाँ कि राज की बारात का स्वागत करें ! बस, घर पर अच्छा खाना खिला देना है। जो कुछ बची-खुची पूँजी है उसी में लगा देनी है। चलो, एक बेटी का तो भार उतरा। राज ने मेरी लाज रख ली। बड़ा भला लड़का है। युग-युग जिए मेरा राज ! लता बेटी रानी बनेगी—रानी !...'

'हाँ माँ, सोने-चाँदी से लद जाएगी वह। घर में दूसरा और कोई नहीं—बस, एक बूढ़ी सास। समझो, दीदी का ही एकछत्र राज रहेगा।—ह-ह-ह। रानी क्या, पटरानी बन जाएगी ! ह-ह-ह।'

'अजीत को निमन्त्रण मिल गया होगा। उसे अब मालूम हो गया होगा कि जिसे उसने ठुकराया वह अब रानी बनने जा रही है—रानी ! मेरी लता के भाग्य को विधाता ने अपने हाथों सँवार दिया है। देखो, ऊँची हवेली में जाकर बैठी। जय बाबा विश्नाथ !'

'... ...............'

'और यह अजीत कैसा निकला ! मै तो हैरत में हूँ। कोई

जिक्र तक नहीं। चुपके-चुपके शादी तय कर ली। मैं तो उसे भला समझती थी। मगर वह तो बड़ा चालू निकला···।'

माला चुप है। लता जुल देती है—

'हमें भी तो कुछ बताया होता। रोज हमारे यहां आता, हम उसे परिवार का एक सदस्य मानते रहे, मगर उसने तो अपने को पूरा दगाबाज साबित किया। माँ, तुम्हें तो मेरी बात पर विश्वास ही न होता था। मैं तो उसे बराबर एक बड़ा चालबाज व्यक्ति समझती थी।'

'हाँ, मेरी आँखों पर पर्दा पड़ा था। उसने हमलोगों से बताया क्यों नहीं? आखिर हम शादी काट तो नहीं देते! छीः—छीः।'

माला चुप है। यशोधरा की तरह कुहुक रही है, कराह रही है, मन-ही-मन गुनगुनाती—'सखि! वे मुझसे कहकर जाते।'

माँ और दीदी की इन शिकायती बातों को सुनते-सुनते और अजीत की ऐसी अप्रत्याशित उपेक्षा पर सोचते-सोचते वह ऊब गई और एकाएक अपने कमरे में जाकर सितार लेकर बैठ गई। कोई गत बजाने की चेष्टा की, पर निष्फल रही। न जाने क्यों आज सितार के तार भी रूठ गए हैं। उनमें कोई बोल नहीं, कोई जान नहीं। ऐसा क्यों—ऐसा क्यों? सभी तार

बेजान ! सभी बोल बेजबान ! घर की दीवारों से, सितार के तारों से, बस एक ही गूँज गूँज रही है—'सखि ! वे मुझसे कहकर जाते '' वह कान बन्द कर छत पर दौड़ गई। कहीं कुछ दिखे नहीं, कहीं कुछ सुने नहीं। मगर दिग्दिगन्त से, विश्व के ज़र्रे-ज़र्रे से बस एक ही गूँज गूँज रही है,—और वह है—'सखि ! वे मुझसे कहकर जाते !'

'सखि !·····················।'

माला के हाथों में फिर दो निमन्त्रण-पत्र खेल रहे हैं। एक में लता और राज की शादी का सन्देश है और दूसरे में किरण और अजीत की। वह दोनों को बार-बार पढ़ती, आँखे फाड़-फाड़ कर पढ़ती, पढ़ती ही रह जाती। '···किरण ' तुम कौन हो ? तुमने पहले नही बताया कि अजीत बाबू की जीवन-संगिनी तुम होने जा रही हो। मै तुम्हें अपने हाथों सजाती, अपनी छाती से लगाकर अजीत बाबू की सारी बातें तुमसे बताती। तुम्हें बताती कि अजीत बाबू को क्या पसन्द है और क्या नापसन्द। उन्हे कौन-सा खाना रुचता है और कौन-सा नहीं। कब कैसा मूड रहता है। कब ठहाका लगाते हैं और कब माथापच्ची करने लगते हैं। उनसे वर्षों की जान-पहचान से मैं सब जान गई हूँ। मगर तुम्हें यह सब अभी सीखना होगा, जानना होगा।—वाद्यों में सितार, राग-रागिनी में

जैजैवन्ती, फूलों में जूही, फलों में आम, मिष्ठान्न में कलाकंद, मौसम में बरसात की रात, लेखक में शरत्, सिनेमा में देवदास। मन से निश्चल, हृदय से विशाल। और सुनोगी? चटपटी चीज़ों से खास शौक़, छिपकिली से भयानक डर और किसी कोमल गले से निकली हुई स्वर-लहरी पर बेहद आकर्षण!

पगली-सी वह इतनी सारी बातें हँसती-हँसती कह तो गई, परन्तु परकटी कबूतरी की तरह तड़पती रही, बिलखती रही। आज उसे जान पड़ रहा है कि उसका अब कोई सहारा नहीं, कोई ठौर नहीं। उसके पास किसी का प्यार नहीं, किसी का सद्भाव नहीं। बिना छाँव की ज़िन्दगी भी कितनी दर्दनाक होती है—कितनी खौफनाक! और, जिस राहगीर को एक बार छाँव मिलकर दूर सरक जाए, जिस दिलदार को एक बार प्यार मिलकर बिलट जाए, जिस प्यासे को सोता मिलकर सूख जाए, उस अभागे की क्या गति हो, क्या मति हो—यह कोई क्या कहे, कैसे कहे!

✣

प्रिय माला,

मेरे विवाह के निमन्त्रण-पत्र को पाकर तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, मैं इसकी कल्पना से ही काँप उठता हूँ। निमन्त्रण-पत्र डाक में छोड़ देने के उपरान्त मैं यह बराबर चाहता रहा कि वह किसी तिलस्मी करिश्मे से तुम्हें मिल न पाता। काश! लेटर-बक्स तूफ़ान में उड़ जाता या डाकिए के बैग से वह निमन्त्रण-पत्र खो जाता। परन्तु ऐसा न हुआ होगा, वह तुम्हें मिला ज़रूर होगा। अशुभ सूचनाएँ किसी-न-किसी जरिए जल्द मिल ही जाती हैं। किसी की मृत्यु की खबर बिजली की तरह दिग्-दिगन्त में फैल ही जाती है। मेरी कहानी कोई लम्बी कहानी नहीं है। 'दो लफ़्ज़ों में पोशीदा, बस मेरी कहानी है।'

घर में क़दम रखते ही मेरे पुराने नौकर रामभजन ने मुझे छाती से लगाकर कहा—'अज्जु! आज मेरा सपना

साकार होने जा रहा है। यह दिन देखने के लिए ही शायद मैं जी रहा था! लो, तुम्हारी शादी तय हो गई। फलदान चढ़ाने के लिए पण्डितजी आज तुम्हारे साथ-ही-साथ ट्रेन से उतरे हैं।'

मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगा। फिर भाभी और माँ मुझसे लिपट गईं। यह शादी अब टल नहीं सकती। इसे होना ही है। उधर भाभी के रिश्तेदार की लाज रखनी है और इधर माँ के ढलते जीवन का भी ख्याल करना है। तो समझी, अजीत बाबू की एक न चली। रात्रि में आँगन पूर कर मुझे वहाँ बिठाया गया और मंत्रोच्चार के साथ-साथ पंडितजी ने मेरे हाथ में एक चाँदी का कटोरा, पाँच गिन्नियाँ तथा कुछ अक्षत इत्यादि रख दिए। बस, समझो इश्तहार बँट गया और दूसरे ही दिन से विवाह की तैयारी में घर भर जम गया।

नाटक के दृश्य की तरह एक-एक दृश्य आए और निकलते गए और मजा यह कि मैं उस खेल का दर्शक भी था और उसके रंगमंच का खिलाड़ी भी। जब मैं रंगमंच पर अपना पार्ट अदा करता तो सुनता कि कोई मुझसे चुपके-चुपके कह रहा है—माला ने ही तो कहा था—'सोलहो आने सच—हाँ, हाँ, सच।' मैं चौंक कर भी शान्त हो जाता।…फिर एक दिन वह

भी आया जब मेरी चादर की गाँठ में एक नववधू का प्यार, उसकी मान-मर्यादा, यानी उसका सर्वस्व बाँध दिया गया। उस रात मेरी लरजती हुई उँगलियों में न फूल की माला टिक पाती थी, न आरती की शिखा। मेरी रंगीन चादर उस गाँठ के बोझ से रह-रहकर मेरे कंधे से गिर पड़ती कि मेरी सालियाँ उसे उठा कर फिर कंधे पर रख देतीं और मुझे चेतावनी देतीं कि यह शुभ गाँठ-बन्धन है—कंगन खुलने के दिन तक ऐसा ही बँधा रहे, जरा चादर पर विशेष ख्याल रखें। मगर जितना ही मैं चाहता कि यह चादर जमीन पर गिर जाय या वह गाँठ खुलकर बिखर जाय कि उतना ही वह मुझसे बँधता गया और अन्त में मेरी सास के इसरार पर वह चादर मेरे गले में फंदे की तरह बाँध दी गई, ताकि रस्मों की भीड़ से बार-बार वह जमीन पर न गिरे। ·······तो यह कहानी मेरे बँधने की रही।

इस बन्धन की प्रतीक किरण से मुझे उस रात दर्शन कराया गया जिस रात इन तमाम रस्मों की समाप्ति हो रही थी। मेरे रंगीन पलंग पर सुनहरे तार तथा रंगीन फूलों की भरमार थी तथा मेरा वह छोटा प्रकोष्ठ तरह-तरह के इत्रों से सुवासित था। किरण को सजा-बजाकर मेरे सामने रख दिया गया था और मुझे माँ ने यह फरमान दिया था कि उसे एक